ना मार कर दिया। कितनी ही बार उनको
मकाया, आप आगे न बढ़िएगा परन्तु उन्होंने एक न मानी।
उनका शौर्य, उनका साहस, सब ही, अपूर्व था—पर यह दुराग्रह
का फल है।"

पद्मनाथ का यह सब कथन वृद्ध राजपूत चुपचाप सुन रहा था। बीच बीच मे उसकी आँखों म आँसुओं की बूँदे टपकती जाती थीं। किन्तु उनकी कोई पर्वाह न कर वह अपने मार्ग पर ध्यानपूर्वक चल रहा था। पद्मनाथ ने वीरसिंह की मृत्यु का यह वृत्तान्त उससे पहली बार नहीं कहा था, यह कोई चौथा पाचवा बार होगा, पर उसके सुनने से वृद्ध को किसी तरह के कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। यदि कोई मनुष्य, जिसके ऊपर किसी का प्रेम हो, मर जाए तो उसकी मृत्यु का वृत्तान्त बार बार कहने या किसी का कहते हुए सुनने से भी मन को एक प्रकार की सान्त्वना मिलती है। वही स्थिति इस समय सग्रामसिंह की था।

थोड़ी दूर और चलकर वह गाडी और मण्डली एक घनी झाड़ी के पास पहुँची। यहाँ एक तरफ रास्ते का एक ढेर दिखाई देता था। उसी समय एक भील ने आगे बढकर इधर-उधर देखते हुए सहसा कहा, "बस यही वह जगह है।"

गाड़ी रुक गई और भीतर से ही किसीने उसके परदे उठा दिए। तदनन्तर बाईस-तेईस वर्ष की एक युवती बाहर की तरफ मुँह निकाल इधर-उधर देख कर उसमे से नीचे उतरी। उसका मुखमण्डल बहुत दुखपूर्ण दिखाई देता था। उतरते ही उसने फिर एक बार परदा हटा कर अपने हाथ के सहारे एक किसी सुन्दरी तरुण स्त्री को नीचे उतारा।

वह दूसरी स्त्री करुणरस की मानो सजीव मूर्ति थी। वह केवल शुभ्र वस्त्र पहने हुए थी। उसके गले म मोतियों का

माला तथा हाथ मे सिर्फ एक ही कंगन था। इस समय उसके नेत्रों मे आँसू नही थे—एक बार उनका पूर मानों सदा के लिए बह कर अब उनका वहाँ नाम तक नहीं रहा था। अथवा यह भी हो सकता है कि आँसुओं को बाहर न आने देने के निश्चय से उस सुन्दरी ने उनको अन्दर ही अन्दर दबा रक्खा था। उसने निश्चय किया था कि दूसरो को उसका दुःख न मालूम हो सके. और वह निश्चय उसके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रहा था। जिस स्त्री ने उसे गाड़ी से उतारा था वह उसे तुरन्त अपने साथ ले राख के ढेर के पास पहुँची और फूट फूट कर रोने लगी। वृद्ध राजपूत एक ओर चुपचाप खड़ा था तथा उसी तरह उसके साथी भील भी एक तरफ खड़े हुए थे। अन्य राजपूत भी विषण्णवदन हो वृद्ध के पास ही जाकर खड़े हो गए। हरेक के चेहरे पर दुःख के चिन्ह स्पष्ट रूप से विद्यमान थे, परन्तु उस बाईस-तेईस वर्ष की स्त्री के सिवा किसी के भी मुख से शोक के उद्गार बाहर नहीं निकलते थे। "वीरसिंह जी ! वीरसिह जी ! आप कैसे हमे छोड़ गए ? महाराज की सेवा करने के लिए आप का जन्म हुआ था यह बात हमे स्वीकार है, परन्तु केवल इसी के लिए अपना जीवन संशय मे डालने का कोई कारण न था। क्या आप अपनी पत्नी से, हमसे, अपने पिता से, इतना उकता गए थे कि आप ऐसा साहस कर बैठे ?" इसी प्रकार करुणा भरे शब्दो मे चिल्लाकर वह रोरही थी।

दूसरी युवती की आयु लगभग बीस वर्ष की होगी। उसने एक बार नीचे झुककर उस राख के ढेर के सामने सिर नवाया और उसमे से थोड़ी राख उठा कर अपने मस्तक पर लगा ली। इतने मे उसकी आँखो से आँसू बहने लगे और बड़ी कठिनता से ... सिसकियों को रोक सकी। उसने अपने आँसू पोंछे

और फिर बडो धीरता से अपनी सखी के पास जा उसे उठाने के लिए उसका हाथ पकडा । वह बोली, "देवलदेवी ! माता जी को न लाकर तुम्हे क्या मैं इस तरह विलाप करने के लिए लाई थी या इसलिए कि तुम मुझे शीघ्र आज्ञा दे सको ? पिता जी ! आप अब देर क्यो कर रहे हैं ? इन भीलो को चिता बनाने के लिए ईंधन लाने की आज्ञा क्यों नहीं देते ? आइए, मथुरानाथ जी ! आप उपाध्याय हैं, मन्त्रोच्चारण कर मुझे विदा दोजिए, इसीलिए पिता जी आप को यहाँ लाए हैं । अब आप लोग कोई दु ख न करे । मुझ मे अपने पति के दर्शन की इच्छा प्रबल हो रही है । जैसे जैसे आप विलम्ब करते हैं वैसे ही वैसे मुझे अधिक वेदना होती है । अब क्यो मुझे दु ख देते हैं ?—चलो उठो, उठो, देवल! क्या तुम इतना विलम्ब कर रही हो ?"

इन धीर तथा शान्त व्याकुलता क शब्दो को सुन कर सब को बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि जब सग्रामसिह कमलकुमारी को लेकर घर से निकले थे तो उन्हे आशा थी कि इस स्थान तक आते आते कमलकुमारी अपने पति के साथ जाने के निश्चय को छोड देगी । परन्तु जब यह सब दूसरी ही बातें देख पडी तब उन्हे बडा ही निराशा हुई । उनका धैर्य टूट गया और वह स्त्रियों के समान विकल होकर रोने लगे ।

कमलकुमारी सग्रामसिह की इकलौती बेटी थो । मेवाड के राणा राजसिंह के वश के वीरसिंह नामक एक पुरुष से उसका विवाह हुआ था । वीरसिंह मुगलों का बड़ा ही द्वेषी था और राणा राजसिह उस पर बडा अनुग्रह रखते थे । उसकी भी राणा के ऊपर इतनी भक्ति एव निष्ठा थी कि यदि राजसिंह उसे अपना सिर काटने की भी आज्ञा देते तो वह उसका तुरन्त ही पालन करता । ऐसी स्वामि-भक्ति जिस व्यक्ति में हो उस पर यदि उसके

स्वामी की कृपा रहे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। वीरसिंह की महत्वाकांक्षा यह थी कि वह मुग़लों का सर्वनाश करे और अपनी इस आकांक्षा की तृप्ति के लिए उसने राजसिंह से सरहद की रक्षा करने का भार अपने लिए माँग लिया था। औरङ्गज़ेब राजसिंह को राजपूताने में प्रबल देख कर जी में जलता था और इसलिए उसने कुछ भेदिए लोगों तथा कुछ फौज को मेवाड़ की सीमा पर जगह-जगह छोड़ रक्खा और अवसर पाने पर उनके राज्य में प्रवेश करने की आज्ञा भी उन्हें दे दी थी। इधर राजसिंह को इन लोगों का अपने यहाँ दिखाई दे जाना भी अप्रिय था। इसलिए उन्होंने अपनी सीमा पर, स्थान स्थान पर, छावनियाँ बना कर उन्हें अपने शूरवीर राजपूतों के अधिकार में छोड़ दिया था। अरावली पर्वत के अत्यन्त दुर्गम और भयानक जंगल में वीरसिंह रक्खे गए थे। इस स्थान पर रहते हुए वीरसिंह ने किस प्रकार का साहस दिखाया और उसका क्या परिणाम हुआ पद्मनाथ के सम्भाषण द्वारा पाठक उससे परिचित हो गए होंगे। वीरसिंह जिस समय अपनी छावनी के लिए रवाना हुए थे तो अपनी पत्नी को साथ में नहीं लाए थे। अतएव उनकी मृत्यु का दुःखसमाचार उनकी पत्नी तथा उनके माता-पिता को कोई आठ दिन पीछे मालूम हुआ। पतिमृत्यु की दारुण खबर सुनकर कमलकुमारी ने सती हो जाने का दृढ़ निश्चय किया। सती होने के लिए पति के शव की जरूरत थी परन्तु उसे उनके साथियों ने जला दिया था और तदनन्तर वे यह दुःख-समाचार सुनाने उसके पिता के पास आए थे। इसलिए जिस स्थान पर पति के शव का दाह किया गया था उस स्थान पर जाकर पति की मूर्त्ति बना उसके साथ या उनकी पादुका लेकर ही सती हो जाने का उसने निश्चय किया।

अकबर बादशाह ने सती होना बन्द करने की बहुत चेष्टा की

किन्तु उसे इस कार्य में मनोवाञ्छित यश प्राप्त न हो सका। क्षत्रिय रमणियाँ पति की मृत्यु के बाद उसके साथ जाने के लिए सदैव उत्सुक रहा करती थीं। पति के मरण के पश्चात हरेक पतिव्रता स्त्री के लिए, इस जगत् में जीवन बिताना पापलोक में रह कर अपनी आत्मा को भी उसी में कैद कर रखने के समान था, और इसी कारण से वे खुशी खुशी पति के साथ अपना भी दाह करा लेती थीं।

कमलकुमारी ऐसे ही निश्चय वाली पतिनिष्ठा स्त्री थी। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने उसी क्षण, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, अपना निश्चय किया और तुरन्त सती हो जाने के लिए तैयार हो गई। परन्तु क्या कोई माता पिता अपनी इकलौती कन्या को अग्नि में भस्म होने देने के लिए राजी हो सकते हैं? उन्होंने, उनके मित्रों ने, उसकी सखियों ने उसे इस निश्चय से हटाने की बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु उसने अपना हठ न छोड़ा। मन ने बार बार हर प्रकार से उसे समझाना चाहा—पुराणों में वर्णित कुन्ती जैसी सती स्त्रियों की कथाएँ उसे सुनाई—परन्तु सब निष्फल हुआ। उसका निश्चय दृढ़ रहा। 'अगर आप मुझे सती होने की आज्ञा न देंगे तो मैं खाना पीना छोड़ कर प्राण त्याग करूँगी'—यह उसने दृढ़तापूर्वक स्पष्ट रूप से कह दिया और तदनुसार एक दिन भर जल तक का ग्रहण नहीं किया। ऐसी दशा देख कर समामसिंह ने लाचार हो उसे अपनी इच्छानुसार करने की अनुमति दे दी। तब उसने हठ किया कि मेरे साथ किसी को भी नहीं जाना होगा और खासकर माता जी तो हरगिज नहीं जाएँगी, क्योंकि उनके मन में अधिक मोह उत्पन्न होने से ~~~ह कष्ट होगा। पहले रिवाज था कि जब कोई स्त्री सती होने जाती थी तो बहुत से लोग उसके साथ जाया करते थे और

उस समय तरह तरह के बाजे भी बजते थे। परन्तु कमलकुमारी ने इसके लिए भी मना किया। अंत में, सब बातें उसकी इच्छा के अनुसार कर केवल उसकी सखी देवलदेवी, उपाध्याय मथुरानाथ, पद्मनाथ और दो शूर राजपूतों तथा मार्ग बताने के लिए चार भीलों को साथ ले. आरंभ में वर्णन की गई गाड़ी में उसे बिठा कर संग्रामसिंह वीरसिंह की चिता के पास आए। वहाँ पहुँचने के बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

देवलदेवी ने इस अभिप्राय से कि एक बार और अपना अन्तिम प्रयत्न कर कमलकुमारी को उसके हठ से हटाने की चेष्टा की जाए जैसे तैसे अपने शोक को दबाया और उससे कहा, "कमल! तू पागल तो नहीं हो गई है जो इतनी थोड़ी उम्र में ही सती हो जाने की जिद करती है? भगवान् एकलिंग जी की सेवा में शेष आयु बिताने से क्या तुम्हें कम पुण्य मिलेगा? पिताजी और माताजी को तेरे सती हो जाने से कितना दुःख होगा इसका क्या तुझे बिलकुल खयाल नहीं है? तू उनकी एकमात्र कन्या है—उनके जीवन का आधार है। यदि तू इस तरह प्राणत्याग करेगी तो उनकी क्या दशा होगी? अरी मूढ़! क्या उनके दुःख की ओर तू तनिक भी ध्यान न देगी?"

यह सुन कमलकुमारी हँस कर कहने लगी, "देवल! तेरे शब्दों पर मुझे बड़ी हँसी आती है। क्या तेरे कहने का मतलब यही है कि यदि मैं पति के साथ प्रस्थान कर जाऊँगी तो पिताजी माताजी को बड़ा दुःख होगा परन्तु अमंगलपूर्ण वैधव्य से कलंकित मुझे प्रतिदिन देखते रह कर वे संतुष्ट होंगे। देवल; तेरे ही से यह स्पष्ट हो जाता है कि तू पागल है या मैं। चल, उठ,

अब ऐसी मूर्खता का बात मत कहना। मेरी सब तैयारी करा दे और इन भीलों से ईंधन लाने को कह—पिताजी को कष्ट देने की जरूरत नहीं। यह दोनो राजपूत और पद्मनाथ जी चिता रच देंगे।" इसके बाद उसने मथुरानाथ की तरफ देख कर कहा, "मथुरानाथ जी! आप प्रतिमा नहीं बनाते? तब क्या मुझे अपने साथ लाई हुई पादुकाओ को ही निकालना होगा? आप जैसा आदेश देंगे वैसा करूँगी। मगर यह क्या! आपके आँसू बहने लगे! इस देवलदेवी ने आप सबो को रुलाया है। क्यों मैं इसे अपने साथ लाई! मैं अकेली ही आती तो अच्छा था।"

"साध्वी कमलकुमारी!" गद्गद कण्ठ से मथुरानाथ जी ने कहा, "तेरे सामने हम लोग केवल तुच्छ मनुष्य ही हैं। तेरी धीरता देख कर हमें विस्मय होता है। तेरा निश्चय ही तेरा मत्र है। हमारे वैदिक मत्रों से तुझे क्या अधिक फल प्राप्ति होगी? सग्रामसिह जी! आपके वश में यह मानवी कमलकुमारी नहीं किन्तु कोई महादेवी है। इस जगत् की लीला देखने ही यह यहाँ आई थी, यह समझ कर अपने को बधाई दो और शोक को दूर कर इसके लिए तैयारी करो। जाओ भीलों! ईंधन लाओ और पुण्य के भागी बनो। देवल! तुम भी अब शोक मत करो, कमलकुमारी सामान्य स्त्रियों के समान नहीं है। धन्य हो साध्वी! तेरा पुण्य ही महाराज राजसिह का पुण्य है। जब तक तेरे समान स्त्रियाँ इस मेवाड़ देश में हैं तब तक किसी की भी हिम्मत नहीं कि उसकी ओर टेढ़ी नजर से देख सके। चलो अब, हम सब शोक को त्याग कर अपने अपने काम में लगें। हमारे बड़े भाग्य हैं कि हम इस समय ऐसे अवसर पर यहाँ आ पाए।'

यह कह कर मथुरानाथ बैलगाड़ी के पास गए और तुरन्त साथ में लाए हुए सामान को उसमें से निकालने लगे। देवलदेवी

अब भी मन उदास किए हुए शोक कर रही थी। कमलकुमारी ने ज़ोर के साथ उससे शान्त होने को कहा और उसे हाथ पकड़ कर उठाया। देवल भी अब कुछ कुछ प्रकृतिस्थ हो गई थी। जब उसने देखा कि अब कमलकुमारी सती हुए बिना नहीं रहेगी तब उसने बलपूर्वक अपने शोक को रोका और कमलकुमारी को सहायता देने के लिए तैयार हुई। सती होने का जरूरी सामान कमलकुमारी अपने साथ ले आई थी। यह सब देख कर मथुरानाथ जी को बड़ा विस्मय हुआ। परन्तु सती होने का जिसने निश्चय किया हो उसे क्या इतनी बात भी न सूझती—यह मन में सोच उन्होंने देवलदेवी के हाथ में रक्तवस्त्र देकर उसे कमलकुमारी को पहनाने के लिए कहा। तदनन्तर उसके सिर को गूँथने तथा माँग में कुंकुम भरने और फूलों से उसका केशपाश सुशोभित करने को कह कर वह ख़ुद चिता की ओर गए। सती की चिता जिस विशेष रीति से बनाई जाती है ठीक उसी प्रकार कमलकुमारी की चिता बनाई गई। भोला ने उसके लिए यथाशक्ति चंदन ही की लकड़ी इकट्ठी की थी। जब चिता बनकर तैयार हो गई तो मथुरानाथ जी ने उससे अपने पिता तथा देवलदेवी से मिलने और माताजी का स्मरण करने एवं पति की पादुका हाथ में लेने के लिए कहा।

कमलकुमारी ने धीरता से सब कुछ किया। उधर संग्रामसिंह धैर्य विगलित हो एक ओर बैठे थे। शोक से वह बिलकुल आकुल थे। जब चिता तैयार हो गई तो उसका अग्नि-संस्कार किया गया। जैसे जैसे चिता जलने लगी वैसे वैसे उनका अंतःकरण फटने लगा। प्रथम तो कन्या का विधवा होना तथा फिर उसे अपने ही सामने सती होते देखना—इससे बढ़कर शोकप्रद एक पिता के लिए और कोई नहीं हो सकती। यह विचार

मन में उदित होने पर वह शून्य दृष्टि से इधर-उधर देखने लगे। इतने में कमलकुमारी उनके सामने आकर खड़ी हुई और प्रणाम कर के बोली, "पिताजी! मैं अब आपसे आज्ञा माँगती हूँ, जिससे जिसके हाथ में आपने मुझे सौंपा था उसी के सहवास में इस लोक की भाँति मैं परलोक में भी रह सकूँ। फिर आप क्यों दु:ख करते हैं। उठिए, और मुझे गोद में लीजिए। जिस प्रकार विवाह के दिन मेरे वदन पर हाथ फेर कर आपने कहा था—'कमल! जाओ, अपनी सुसराल जाकर सुख से रहो, उसी प्रकार अब भी कह कर मुझे आज्ञा दीजिये। मन में ज़रा सा भी दु:ख न कीजिए। माताजी से कहना कि मैंने अपने पति की पादुका लेकर आनन्द से उनके पास प्रस्थान किया और एक बार भी दु:ख का निश्वास नहीं छोड़ा। और भी कहना कि मेरे स्थान पर अब देवलदेवी हैं—उसमें वह वैसा ही प्यार करें जैसा कि मुझसे करती थीं। कहेंगे न पिता जी? मगर यह क्या, आपकी आँखें क्यों भर आईं?

अपने पिता से इतना कह वह देवलदेवी के पास गई और बोली, "देवल! मेरे स्थान पर अब तुम्हीं हो। पिताजी और माताजी को तसल्ली देना। इस तरह बर्ताव करना कि उन्हें मेरी याद न आए। इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे तुमसे नहीं कहना है।" तब वह मथुरानाथ से बोली, "मथुरानाथ जी! आप पुरोहित हैं, इसलिए प्रथम आपको प्रणाम करती हूँ। माताजी का स्मरण कर उन्हें प्रणाम करती हूँ। पिताजी! आपको प्रणाम, मुझे आनन्द से आज्ञा दीजिए।'

इतना कह कर उसने एक बार सब की ओर देखा और फिर उपाध्याय से मन्त्रादि कहने तथा विधि बतलाने की प्रार्थना की। मथुरानाथ का कंठ इतना गद्गद् हो रहा था कि उनके मुख से

शब्द तक बाहर न निकलते थे और यदि जैसे-तैसे निकलते भी थे तो रोती हुई सी आवाज़ से। कमलकुमारी उनकी ओर देख कर हँसी और बोली, "उपाध्याय जी! आपको क्या हो गया है? अगर आपही शोक करेंगे तो माताजी और पिताजी को कौन सान्त्वना देगा? और अगर आप मंत्र ठीक प्रकार से नहीं कहेंगे तो विधि शास्त्र के अनुसार नहीं हो सकेगी और न मुझे ही समाधान होगा। बताइए तो अब मैं क्या करूँ?"

मथुरानाथ ने उत्तर दिया, "कमलकुमारी! तुम परम साध्वी हो; हमारे मंत्रो की तुम्हे क्या ज़रूरत है? तुम्हे हम आशीर्वाद नहीं दे सकते। इसके बदले तुमसे आशीर्वाद की याचना करनी होगी। तुम हमे प्रणाम नहीं कर सकती हो वरन हमे ही तुमको प्रणाम करना होगा। पर तुम्हारा आग्रह ही है तो आओ यहाँ खड़ो होओ। मंत्र का उच्चारण करते ही पर, है! यह क्या आपत्ति है! घोड़ो पर सवार ये सिपाही इधर क्यों आ रहे हैं?" परन्तु मथुरानाथ अपने वाक्य को पूरी तौर से कह भी न सके। ज्योंही उन्होने इतना कहा और कमलकुमारी ने, जो कि सती होने के लिए चिता मे कूदने को तैयार खड़ी थी, ऊपर को देखा, त्योंही लगभग पचास सिपाही वहाँ आ खड़े हुए और 'यह क्या! यह क्या!' कह कर धूम मचाने लगे।

यह विलक्षण स्थिति देख कर कमलकुकारी अत्यन्त क्षुब्ध हुई। सती होने के बीच मे ही एक विघ्न उपस्थित हो गया। और तो क्या, जिनकी छाया तक ऐसी अवस्था मे अशुभ है वे ही बेधड़क चिता के पास आ पहुँचे। जो कुछ हुआ सब ही अशुभ था। और आगे कितने विघ्न आएँगे इसे कौन कह सकता है। यह शंका मन में उत्पन्न होते ही उसका कलेजा मानो फटने लगा। तथापि धीरता से वह चिता के पास जा मथुरानाथ को पुकारने

लगी। इतने में नई मंडली में से एक, अपना घोड़ा आगे बढ़ा उसके सन्मुख आया और एकदम उसे पहचान कर बोल उठा, "कौन ? कमलकुमारी। क्या तू सती हो रही है ? और तुझे सती होने की आज्ञा किसने दी है ? इसी ने—तेरे पिता संग्रामसिंह ने। क्यों ? "

अपने नाम से उसे परिचित देख कर पिता पुत्री, दोनों, बड़े विस्मित हुए और उसकी ओर देखने लगे, परन्तु वे उसे पहचान न सके। तथापि कमलकुमारी ने एकदम उसके सामने जाकर कहा, " भाईजी ! आप कोई भी व्यक्ति हों, मेरी आप से यही विनय है कि मेरे निश्चय की पूर्ति में आप बाधा न डालें। बड़ी कठिनता से इन सब की इच्छा के विरुद्ध इनकी सम्मति पा में सतीधर्मानुसार आचरण करने में समर्थ हो सकी हूँ। इस समय में मानो स्वर्ग के द्वार पर खड़ी हूँ—इस आनन्द में मैं डूबी जा रही हूँ,—फिर आप क्यों इसमें विघ्न डालते हैं ? अगर आप राजपूत हैं तो मुझे अपनी धर्म की बहन समझ सती धर्म के अनुसार चलने दीजिए और यदि राजपूत नहीं हैं तो भी कृपा कर विघ्न न डालिए। "

कमलकुमारी ने इतनी धीरता से इन शब्दों को कहा कि उन्हें सुनकर उस मनुष्य को, जो इस समय चिता के और उसके बीच में खड़ा था, बड़ा आश्चर्य हुआ और वह निस्तब्ध हो उसकी ओर देखने लगा। कौन कह सकता है कि क्षणमात्र के लिए उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ हो कि इसके धर्माचरण के बीच में हम टांग विघ्न क्या डालें। परन्तु यदि ऐसा विचार उसके मन में आया भी होगा तो वह केवल क्षण भर ही के लिए। क्योंकि तुरन्त ही अपने भावों को अपने मन में ही छिपा कर उसने कमलकुमारी से कहा "कमलकुमारी ! मैं कौन हूँ, इसका उत्तर

देने का यह समय नहीं है। परन्तु इस वक्त मैं तुम्हें सती न होने दूँगा और अपने साथ ले जाऊँगा। अगर आप सब लोग समझदार हैं तो शान्ति-पूर्वक मेरा कहना मान लें; अगर नहीं तो .. .. ।"

परन्तु संग्रामसिंह तत्काल आगे बढ़े और उनकी तरफ झपट कर चिल्ला कर बोले, "क्या तू यह नहीं जानता है कि किससे तुझे झगड़ना होगा। बाज के घोंसले से अगर उसके बच्चे को छीनना चाहो तो बाज़ से लड़ना पड़ता है। हरामजादे ! सती-धर्म में बाधा डालने वाले अधम से भी अधम तुझको आत्महत्या की शिक्षा देना ही उचित है।"

इतना कहते कहते क्रोधातिरेक से वृद्ध का शरीर थरथर काँपने लगा। उनकी आवाज़ भी भर्राने लगी। तलवार निकाल कर उन्होंने विघ्न डालने वाले के शरीर पर एक वार किया। दोनों ओर से लड़ाई शुरू हो गई।

परन्तु सतीधर्म में विघ्न डालने वाला यह व्यक्ति कौन था और आगे उसने क्या किया तथा उस लड़ाई का क्या फल हुआ —यह सब आगामी परिच्छेद में कहा जायगा। इस समय इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि उसका नाम उदयभानु था।

दूसरा परिच्छेद

उदयभानु

जब कोई राजपूत मुसलमानी धर्म स्वीकार करता था तो औरङ्गजेब को इतना आनन्द होता था जितना कि प्राय पितरो के स्वर्ग को जाने से, या पुत्र लाभ करने से किसी को होता है। उस पर भी, जिस राजपूत कुल के ऊपर उसकी कड़ी नज़र रहती उसमें का कोई व्यक्ति यदि मुहम्मदी धर्म स्वीकार करता तो वह महोत्सव मनाता था। उदयभानु का जन्म किसी उच्च कुल में नहीं हुआ था। सच देखा जाय तो, मेवाड़ के वंश के किसी पुरुष का वह दासीपुत्र था। पर वह अपनी जन्मकथा को छिपा कर मेवाड़ के शूर वंश में अपना जन्म बतलाया करता था। जिस समय मनुष्य अपनी हैसियत को भूल कर दूसरों के साथ गर्वपूर्ण व्यवहार करने लगता है तो फिर कोई उसकी कद्र नहीं करता। और जब कि वह अपने को राजकुल का कोई बड़ा सरदार बताने लगे तब तो हर कोई उसकी जन्मकथा को प्रकाशित कर उसके मुँह पर ही उसकी चर्चा करने लगता है।

उदयभानु बड़ा शूर, सुन्दर, भद्र, बलायुक्त, होशियार तथा महत्त्वाकांक्षी था। परन्तु अपने गर्वपूर्ण आचरण के कारण वह उदयपुर में अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने का अवसर न पा सका। अपने जन्मसम्बन्धी कलङ्क को धो डालने तथा राज-दरबार

में ऊँचे सम्मान की जगह प्राप्त करने के लिए उसने युद्ध-पर-युद्ध जीते परन्तु यश न प्राप्त कर सका। राजदर्बार में उच्च स्थान पाने का प्रयत्न करके ही वह संतुष्ट न हुआ। उसने राजवंश के ही समान प्रतिष्ठित किसी सरदार-कुल की एक नवयौवना कन्या से अपना विवाह करने की इच्छा की और उसकी पूर्त्ति के लिए प्रयत्न भी किया। परन्तु, 'दासी का पुत्र'—यह कलंक उसका जीवन भर न धुल सका और इस कारण अपने दूसरे प्रयत्न में भी उसे विफल-मनोरथ ही होना पड़ा।

उदयभानु की जिसके साथ विवाह करने की बड़ी आकांक्षा थी वह संग्रामसिंह नाम के एक बड़े सरदार की इकलौती कन्या कमलकुमारी के अतिरिक्त और कोई नहीं थी। संग्रामसिंह के पास जा जब उसने अपनी हार्दिक इच्छा उनसे प्रकट की तो वे बड़े बिगड़े और बोले, "हमारी कन्या हंस के कुल में ही जाएगी। कौआ चूने में अपने पंख डुबो कर उन्हें सुफेद करने की कितनी ही कोशिश करे तो भी वह हंसों को किसी तरह नहीं पा सकता।"

यह उत्तर सुनते ही उदयभानु मन में जल उठा। और जब कुछ समय बाद, उसने यह सुना कि कमलकुमारी का विवाह वीरसिंह से हो गया है तब तो वह आग-बबूला हो गया। वीरसिंह ने शुद्ध राजवंश में जन्म पाया था। वह एक प्रकार से उदयभानु का चचेरा भाई था, क्योंकि उदयभानु का पिता और वीरसिंह का पिता, दोनों, सगे भाई थे। परन्तु उदयभानु अपने बाप की दासी का पुत्र था, इसलिए कोई भी उसे 'भाई' कहने पर राज़ी नहीं था। वीरसिंह और उदयभानु, दोनों की उम्र भी बराबर ही थी और दोनों ने एक ही स्थान पर शिक्षा पाई थी। परन्तु बाद में राजदर्बार में प्रवेश होने के समय वीरसिंह असल राजपूत होने

के कारण शीघ्र ही 'सरदार' की पदवी पा सका—बल्कि इतना ही नहीं, वह राजसिंह का स्नेह-भाजन बन कर अधिकाधिक सम्मान भी पाने लगा। उधर, उदयभानु यह देख कर मन-ही-मन झुलसने लगा।

इस प्रकार, किसी तरह भी यश प्राप्त करना असभव देख उसने कपट-नाटक रचना चाहा और महाराज राजसिंह के शत्रुओं का साथ देने का विचार किया। औरंगजेब हृदय से चाहता था कि राजसिंह को तथा उनके वंश को पददलित करें,,परन्तु राजसिंह ऐसे-वैसे पुरुष न थे। जिस तरह कि राजसिंह को अपने आधीन करने की औरंगजेब की उत्कट इच्छा थी उसी तरह राजसिंह की भी यह उत्कट इच्छा थी कि अपने सब जाति-भाइयों को मिला कर औरंगजेब को सताएँ या मुगल साम्राज्य का हिन्दुस्तान से मूलोच्छेद करदें।

औरंगजेब के उपाय कभी सरल न होते। कपट-नीति का अवलम्बन कर वह अपने हेतु की सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। उसी के अनुसार इस समय भी उसने अपना उपक्रम आरंभ किया। राजसिंह के राज्य के भीतर चालाकी और फितूर से फूट डालने के लिए अपने प्रयत्न शुरू कर दिए। फल यह हुआ कि उदयभानु के रूप मे उसे एक साधन मिल गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि औरंगजेब के निकट उसका महत्त्व खूब बढ़ा। इस महत्त्व वृद्धि के कारण, अथवा किसी दूसरे कारण से, उदयभानु मदोन्मत्त हो गया। उसके इन आचरणों को देख कर राजसिंह को शंका हुई और उन्होंने उसे अपने राज्य से निकाल दिया। वास्तव में, उचित तो यही था कि उसका सिर कटवा लिया जाता, परन्तु भाग्य के जोर से शिरच्छेद के स्थान मे उसे निष्कासन का ही दण्ड मिला।

अब उदयभानु ने दिल्ली में जाकर खुल्लमखुल्ला औरंगजेब के दर्बार का आश्रय लिया। देखने में अति सुन्दर, स्वभावतः शूर, सम्भाषण में चतुर और कुटिल नीति मे प्रवीण होने के कारण औरंगजेब का वह प्यारा बन गया। वह अपने को मेवाड़ के राज-वंश का बतलाता था और औरंगजेब का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए अब मुसलमान हो गया था, जिससे इस समय वह औरंगजेब के उन खास सरदारों में गिना जाता था।जिनके ऊपर सम्राट् की विशेष कृपा रहती थी।

औरंगजेब कुटिल नीति में सदैव बड़ा ही रसिक और चतुर था। जिस प्रकार राजपूताने में राजपूतों का उच्छेद करने की उसकी उत्कट इच्छा थी, उसी प्रकार दक्षिण में भी शिवाजी का निपात कर उनके स्थापित किए हुए राज्य को पूर्ण रूप से विनष्ट करने के लिए वह परम लालायित था। जब शिवाजी ने दिल्ली से गुप्त रीति द्वारा पलायन किया तो उसे इतना खेद हुआ था जितना कि शायद प्रत्यक्ष उसकी दाढ़ी उखाड़ने से भी उसे न होता। कुटिल नीति में मेरे समान कोई नहीं है, इसका उसे घमण्ड था। परन्तु, जिसे बड़ी ही चालाकी से गिरफ्तार किया वही नज़रबंद क़ैदी अपनी होशियारी से उसके देखते ही देखते भाग गया—इससे बढ़ कर शर्म की बात और कोई नहीं हो सकती थी। शिकार को हाथ से निकल गया देख कर शिकारी स्वस्थ बैठा रहे, यह बड़ी मूर्खता की बात है—इस प्रकार मन में विचार कर औरंगजेब कार्य से च्युत नहीं हुआ। तुरन्त ही उसने अपनी कुटिलनीति से काम लेना आरम्भ कर दिया। कुछ क़िलों पर, तहसीलों पर तथा गाँवों पर शिवाजी का अधिकार स्वीकार किया, कुछ प्रान्त खुद भी उन्हें दिए तथा कुछ नए हक बढ़ा दिए। यह सब करने का कारण केवल किसी तरह शिवाजी को अपने क़ब्जे में फिर से

लाना ही था। जसवतसिंह और शाहजादा मुअज्जम को बारबार आज्ञा देता था कि 'किसी भी तरह से शिवाजी को कैद करो। ऐसा करने के लिए अगर आवश्यक हो तो चाहे जितनी प्रतिज्ञाएँ करो, चाहे जो करो, यहाँ तक कि यदि मुनासिब समझो तो ऐसा भी प्रकट करो कि तुम मुझसे विरुद्ध हो कर मेरे खिलाफ चलना करना चाहते हो, जिस तरह हो उसी तरह विश्वासघात कर के उसे एक बार गिरफ़ार कर के ले आओ।'

परन्तु शिवाजी की चालाकी और सावधानता से तमाम बना-बनाया खेल बिगड़ गया। शिवा जी को यह कपट-प्रबंध मालूम हो गया और बादशाह के साथ किए सुलहनामे की शर्तों के मुआफिक न चलकर इन्होंने आगे अतिक्रमण करते रहने का दृढ़ निश्चय किया।

औरंगजेब ने जसवतसिंह और शाहजादे को कई बार फरमान भेजे, परन्तु उनकी कोई कार्रवाई न देख उसे सन्देह हुआ कि शायद शिवाजी ने इन दोनों को अपनी तरफ मिला लिया है। यह शंका मन में उठते ही वह बड़ा घबड़ाया और अपने तमाम मन्सूबों को मिट्टी में मिलता देख उसने जसवतसिंह तथा अपने पुत्र के ऊपर निगाह रखने के लिए किसी दूसरे विश्वासपात्र मनुष्य को दक्षिण में भेजने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उदयभानु ही योग्य व्यक्ति मालूम हुआ। अतएव तुरन्त उसे बुलवा कर बादशाह ने उससे कहना आरम्भ किया, "उदयभानु! अपने साथ दस हजार राजपूत लेकर तुम फौरन दक्षिण की तरफ जाओ। साथ में, शाहजादा तथा जसवतसिंह के लिए भी तीन हजार आदमी ले जाना। यह चिट्ठी उन्हें देने के लिए तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। इसे उन्हें देकर तुम 'कोंढाणे' किले पर (यही किला बाद में 'सिंहगढ़' के नाम से प्रसिद्ध हुआ) जाकर रहो।

मैं चाहता हूँ, उस किले पर तुम जैसे बहादुर सरदार को ही रक्खा जाए। उस दगाबाज़ शिवाजी से सुलह करते वक्त मैंने उसे 'कोंडाणे' किला नहीं दिया था। इसका कारण यही था कि जब तक वह क़िला अपने हाथ में है तब तक वह प्रान्त उसके कब्ज़े में होने पर भी मानो अपने ही कब्जे में है। जिस वक्त मेरा खत वहाँ पहुँच जाएगा और मेरा मंशा उस काफिर को मालूम हो जाएगा तो वह पहले 'कोंडाणे' पर ही अधिकार करने का प्रयत्न करेगा। इसीलिए तुम्हारे समान मनुष्य को मैं वहाँ भेज रहा हूँ।

इसके अलावा, वहाँ जाते ही तुम्हें एक दूसरा काम भी करना पड़ेगा—तुम्हें पता लगाना होगा कि जसवंतसिंह वेईमान बन कर इस काफिर से तो नहीं मिल गया है। अगर उसके बारे में सब सच्चा हाल बताओगे और जसवंतसिंह की नमकहरामी साबित कर दोगे तो अच्छी तरह से ख्याल रक्खो कि मैं आलमगीर हूँ — तुम्हें निहाल कर दूँगा, जसवंतसिंह का अधिकार तथा उसका राज्य तक तुम्हें मिल जाएगा, जिससे फिर ये राजपूत तुम्हारे पैरों में आकर लोटेंगे।"

अभ्युदय प्राप्त करने का ऐसा उत्तम अवसर पाकर उदयभानु को अत्यन्त आनन्द हुआ—यह कहने की आवश्यकता नहीं। उसने सोचा, "यदि जसवंतसिंह औरंगज़ेब से दगाबाज़ी करते हों तो अच्छा ही है; उनकी ज़रा सी बदनामी की बात मालूम होते ही उनकी शिकायत की जा सकती है। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो बुद्धि के बल से अनेक प्रकार के कपट-प्रबंध रच सकते हैं—हर तरह की चालबाज़ी से काम ले उनके विरुद्ध मनमाने प्रमाण पेश कर सकते हैं तथा किसी न किसी तरह उनको जाल में फँसा कर बादशाह के सामने उन्हें पूरा वेईमान साबित कर सकते हैं। और जब ऐसा हो जाएगा तो फिर जोधपुर का राज्य अपने हाथ में

आने पर दक्षिण की सूबेदारी भी मिल ही जाएगी।" इस प्रकार मन में शेखचिल्लियों के से मनसूबे बाँध कर, भविष्य में किस प्रकार जसवन्तसिंह को जाल में फँसाया जाएगा—इस पर वह विचार करने लगा। बादशाह ने एक हजार चुनींदे सैनिक अपने साथ ले जाने की उसे आज्ञा दी थी तथा साथ ही जसवन्तसिंह की सहायता के लिए भी दो तीन हजार और सिपाही ले जाने को कहा था। इसके अतिरिक्त एक यह रिवाज भी था कि यदि कहीं जाने वाली मुगल सेना एक हजार होती थी तो उसके साथ ढोल बाजेवाला की संख्या लगभग दो हजार हो जाती थी। उदयभानु की सेना इस प्रथा का अपवाद नहीं थी। उसने अपने साथ ले जाने के लिए एक हजार चुनींदा राजपूत लिए थे और जसवन्त सिंह के लिए ले जाने को बादशाह ने तीन हजार दिए थे। कुल सेना चार हजार था और उससे लगभग दोगुने दूसरे लोग थे। इतनी बड़ी फौज और लवाजमा साथ लेकर उदयभानु मन में अपने को जोधपुर का भावी महाराज तथा दक्षिण का सूबेदार समझता हुआ दिल्ली से निकला।

जिस समय नीचे पद का कोई मनुष्य थोड़ा सा अधिकार पा जाता है तो उसे यह इच्छा होती है कि जिन्होंने पहले हमें हीन अवस्था में देखा है उनके सामने इस नए अधिकार का प्रदर्शन करे, उनके नेत्रों को चोंधिया दे और उनका सिर नीचे झुकावे। दक्षिण में आने को उदयभानु के लिए सीधा रास्ता दूसरा था। परन्तु इस भारी फौज को साथ लेकर उसकी इच्छा उदयपुर की सीमा से हो कर जाने की हुई जिससे कि लोग उसके इस बड़े अधिकार-पद को देख कर उसका सम्मान करें। इस फौज का पूरा अधिकार होने के कारण उसे अपने अभिलषित मार्ग से आने में किसी प्रकार की रुकावट न थी। अतएव सेना को वैसा ही

हुक्म देकर उसने अरावली के ही मार्ग का आश्रय लिया। आनन्द सुख के साथ सेनाधिपति महाराज इस तरह चैन से चले जा रहे थे मानों किसी युद्ध के लिए न जाकर वह किसी सुंदरी से विवाह करने जा रहे हों।

उदयपुर के राजा राजसिंह बड़े ही निःस्पृह, बेधड़क और स्पष्टवक्ता मनुष्य थे। इस कारण औरंगजेब उनसे सदा द्वेषभाव रखता था। अतएव, किस समय कौन प्रसंग आजाए इसका कोई नियम न देख वह अपने राज्य में बड़ी सावधानी से रहा करते थे। कई स्थान ऐसे थे जिनमें होकर औरंगजेब का उनके प्रदेश में प्रवेश करना असंभव नहीं था। ऐसे स्थानों की रक्षा के लिए राजसिंह ने अपने विश्वासपात्र मनुष्यों को, जो स्वधर्म के लिए प्राण तक देने को तैयार थे, नियुक्त किया था।

कमलकुमारी का पति वीरसिंह राजसिंह का भतीजा था। वह शुद्ध राजपूत, मुगलों का कट्टर दुश्मन और बड़ा ही दृढ़ निश्चय था। उसे राजसिंह ने जानबूझ कर एक ऐसे ही संशयस्थान पर रक्खा था। राज्य की सीमा के इस प्रकार के भिन्न भिन्न स्थानों पर वीरसिंह जैसे पुरुष नियुक्त करने से राजसिंह का केवल यही अभिप्राय था कि यदि औरंगजेब की सेना सहसा किसी तरफ से आ जावे तो ये लोग उससे लड़ पड़ें और खबर पहुँचने तक, जब तक दूसरी सेना उनकी सहायता को न आ जावे, या जब तक मुसलमानों से लड़ने की भीतरी तैयारियाँ न हो जाएँ, तब तक ये लोग उनसे लड़ते रहें। वास्तव में, इस मार्ग से उदयभानु को सेना ले जाने की जरूरत न थी और न उसे किसी से लड़ने की ही आवश्यकता थी। परन्तु ऐसा करने के अतिरिक्त एक निकम्मे आदमी के लिए अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का और सहज मार्ग हो ही क्या सकता था? जिस राज्य में से राजसिंह ने उसे निकाल दिया

था इसी राज्य में हो कर एक भारी फौज लेकर जाने में उसने अपनी बडी प्रतिष्ठा समझी। साथ ही उसकी यह भी इच्छा थी कि यदि मौका मिले तो थोडी बहुत लडाई कर के उनके कुछ प्रदेश पर कब्जा कर लिया जाए और उनके कुछ सैनिक कैद कर बादशाह के पास भेज दिए जाएँ। अथवा यदि यह कुछ भी न हो सके तो भी राजपूतों को यह तो दिखाया और बतलाया ही जाए कि बादशाह की सेवा करने से कितने बडे वैभव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सैकड़ों विचार कर, उसने दक्षिण की ओर उसी मार्ग से जाना स्थिर किया। रास्ते में स्थान स्थान पर ठहरता हुआ वह मौजें भी करता जाता था। वह समझता था कि दैव मेरे ऊपर बडा ही अनुकूल है—कुछ थोडा सा पराक्रम कर दिखाने से भी बडा लाभ हो सकता है। बस, इसी धुन में मार्ग तय करता हुआ वह मेवाड की सीमा से लगे हुए किसी वन में पहुँचा और वहाँ की सुंदर वृक्षराजि को देख कर अपनी तमाम सेना के साथ वहीं ठहर गया। फिर कुछ समय बाद, शिकार खेलने के लिए उसने जंगल के भीतर प्रवेश किया। उस समय उसके साथ करीब पचास चुनीदा सिपाही थे। वे उस वन में किसी वन्य वराह के पीछे दौडते हुए पहले परिच्छेद में वर्णित उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ कमलकुमारी सती होने की तैयारी कर रही थी। उदयभानु ने पहुँच कर सती के इस कार्य में विघ्न डाला।

जिस समय कमलकुमारी अपने पति का चिन्तन कर उसकी पादुका लेकर चिता प्रवेश करने ही वाली थी, उसी समय उदयभानु ने अपने लोगों के साथ जाकर उसे घेर लिया।

यह लोग कौन थे, एकाएक आकर इन्होंने हम लोगों को क्यों घेर लिया—आदि बातें पहले पहल संग्रामसिंह तथा अन्य लोगों की समझ में न आईं। यह नितान्त असंभव था कि एक राजपूत,

या कोई भी हिन्दू, एक स्त्री के सती होने के समय आ कर बाधा उपस्थित करे। अतएव उन लोगों का पहला अनुमान यही हुआ कि विघ्न डालने वाले मुसलमान होंगे; परन्तु थोड़ी ही देर में उनका यह विचार दूर हो गया। हमला करने वालों का मुखिया यद्यपि शुद्ध फारसी में हुक्म दे रहा था तो भी उसकी बोली के ढँग से यह साफ जाहिर होता था कि यह मुसलमान की संतान नहीं है। और, जैसा कि गत परिच्छेद मे कहा जा चुका है, कमल-कुमारी का जब उस मुखिया से संभाषण हुआ तब सब संदेह दूर हो गया। परन्तु यह समय या प्रसंग यह देखने अथवा अनुमान करने का नहीं था कि यह बाधा डालने वाले कौन अथवा किस जाति के लोग हैं। उस समय केवल इसी बात की आवश्यकता थी कि उन लोगों को ठोक कर ठोक किया जाए और संकट निवा-रण कर कन्या के पति-सहगमन कार्य को यथा विधि पूरा किया जाए। यह सोच कर संग्रामसिंह स्वयं तलवार ले उदयभानु के ऊपर झपटे और उन्होंने अपने मनुष्यों को इन नए शत्रुओं से लड़ने के लिये उत्तेजित किया। कमलकुमारी जैसी साध्वी स्त्री धर्मानुसार पति के साथ परलोक-यात्रा कर रही हो और दुष्ट आकर उसके कार्य मे बाधा डालें—इससे बढ़ कर राजपूत के लिए चिढ़ने का और कौन सा कारण हो सकता है? यद्यपि वे केवल आठ ही मनुष्य थे तथापि अत्यन्त क्रोध के कारण अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उन्होंने उन पचास आदमियों को हैरान कर दिया। परन्तु दुश्मन के जहाँ छै आदमी थे वहाँ इनका एक ही था; और उनमें भी कमलकुमारी और देवल देवी—दो स्त्रियाँ! कहाँ तक लड़ते? अन्त मे कमलकुमारी के पिता संग्राम-सिंह चोट खाकर कैद होगए। शेष सब मृत्यु के वश हुए।

उदयभानु का मुख आनंद से मध्याह्न-भानु की भाँति दीप्ति-

मान् हो गया मानों उसके हाथ में स्वर्ग ही आ गया हो। मन में कहने लगा—दक्षिण-यात्रा के कार्य में जरूर कुछ न कुछ दैवी योजना है। इस समय यदि मिट्टी भी हाथ में लीजिए तो सोना हो जाए। जिस समय वह दक्षिण के लिए रवाना हुआ था तो स्वप्न में भी उसे यह खयाल नहीं था कि कमलकुमारी हाथ आ जाएगी—यही नहीं, यदि किसी भविष्यवक्ता ने भी उससे यह कहा होता तो वह उस पर हरगिज विश्वास न करता। परन्तु जब इस प्रकार आकस्मिक रूप से उसने अपने हाथ में स्वर्ग आया हुआ देखा तो आनन्द से नाच कर वह घायल सग्रामसिंह के पास जाकर इस प्रकार बोला—

"कहिए, मामा जी! आपका यही निश्चय न था कि हंसी का हंस से ही मेल होगा, कौए से नहीं। पर अब क्या कहिएगा? जिस हंस को हंसी दी थी वह तो मानसरोवर को चल दिया और अब आपकी तथा उसकी यह हंसी कौए के हाथ लगी। यत्न तो कर रही थी कि हंस के पीछे ही पीछे चली जाऊँ, परन्तु उसके नसीब म तो कौए से ही सहवास लिखा है। अब कैसे होगा? कौए के हाथ से छुटकारा पाने के लिए कोई उपाय सोचिए। मामा जी! अब तो आप इस कौए के मामा बन हो गए। क्यों! बोलिए, मुँह क्यों बन्द है?"

संग्रामसिंह के बड़ी गहरी चोट लगी थी और कमलकुमारी तथा देवलदेवी दोनों उनके पास बैठकर वस्त्र को फाड़ फाड़ कर उनके जख्म बाँध रही थीं। उस चाण्डाल की बातें सुन कर उनका हृदय विदीर्ण हो गया, परन्तु उपाय ही क्या था। दुष्ट व्यक्ति से बात करना मानो उसके हाथ में अपने अपमान का साधन दे देना है। यही विचार कर, कमलकुमारी चुपचाप अपने पिता के जख्म बाँधती रही और रक्त बहने से शक्तिहीन हो जाने के

कारण संग्रामसिह नेत्र बन्द किये हुए शांत पड़े रहे। देवलदेवी वचन के इस आघात को सहन न कर सकी लेकिन कमलकुमारी ने उसे बोलने से रोक दिया।

जब कोई दुष्ट मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को ताने या गाली देता है तो उसकी एक बड़ी इच्छा रहती है कि उसका प्रतिपक्षी भी उसी प्रकार बातें करे जिससे कि दुष्ट मनुष्य को गाली देने और दुवचन कहने का मौका मिल सके। परन्तु जब उसका प्रतिपक्षी चुप रह जाता है और मर्म को भेदने वाले शब्दों को शान्तता से सुन लेता है तो वह आग-बबूला हो जाता है और दसगुना द्वेष करने लगता है। उदयभानु की अवस्था भी ठीक ऐसी ही थी। संग्रामसिंह, उनकी कन्या कमलकुमारी और देवल-देवी को कोई प्रत्युत्तर देते न देख वह और अधिक चिढ़ गया और संग्रामसिंह तथा कमलकुमारी की ओर देख कर बोला—

"संग्रामसिह! अगर तुम यह समझते हो कि चुप बैठने से मामला सँभल जाएगा तो तुम्हारी भूल है। राजसिह का तुम्हें बड़ा अभिमान है। तुम्हें क़ैद कर अगर मैं बादशाह के सामने लेजाकर खड़ा कर दूँ तो बादशाह खुशी से तुम्हें जेल में डालकर यह हंसी मेरे अधीन कर देंगे। फिर, कौआ ही क्यो न सही, यह हंसी तो उसकी बन कर रहेगी ही। और इसके अतिरिक्त वह कर भी क्या सकती है? तुम्हारे मन में उसे मुझे न देने का इरादा था परन्तु परमेश्वर के मन में तो वह मुझे ही देने के लिए थी। हाँ, बीच मे पड़कर तुमने उसकी इच्छा में विलम्ब कर दिया। खैर, अब चलो, मैं तुम्हें और अपनी इस भावी प्यारी को बादशाह के सामने पेश करके उनसे सब हकीकत कहूँ और उनके द्वारा इसे अपनी पत्नी बनाऊँ।"

संग्रामसिंह से अब न सहन हो सका। जख्म से खून टपक

रहा था परन्तु दुष्ट की बातों से उन्हें तैश आ गया और एकाएक उठकर उन्होंने उदयभानु से कहा—"उदयभानु ! धिक्कार है तुमको जो अपने को राजपूत, क्षत्रियवीर, कहता कर सती के पवित्र धर्म में बाधा डाल रहा है। एक स्त्री पति की मृत्यु के बाद उसके साथ परलोक को यात्रा करना चाहती है और तू उसके मार्ग में आकर उसे उस दुष्ट, अधम, पितृघातक, भ्रातृघातक, चाण्डाल के सामने ले जाना चाहता है। यही तेरा क्षत्रियपन है ? यही तेरा राजपूत कर्म है ? यही तेरा हिन्दू धर्म का अभिमान है ? अधिक अच्छा है कि इसकी अपेक्षा तू "

संग्रामसिंह का यह भाषण सुन उदयभानु ने एक औपरोधिक विकट हास्य किया और कहा, "आज तो आपकी दृष्टि में मैं सच्चा राजपूत, असली क्षत्रिय दिखाई देता हूँ। मगर मैं कौन हूँ यह आप भूल गए हैं। और, मैं आपको याद दिलाता हूँ। मैं तो वही कायर हूँ कि जिसको पत्र चूने में डुबो डुबो कर मुकद्दे किये गये हैं। क्षत्रिय थोड़े ही हूँ। जिस समय मैं आपसे कमल-कुमारी के विषय में प्रार्थना करने गया था उस समय आपने कैसे कटु उत्तर दिए थे। मैं मानता हूँ कि मेरी माता दासी थी, पर यह मेरा दोष तो नहीं है। फिर भी, इसी दोष के कारण मैं नीच बना। पर अब स्थिति एकदम से बदल गई है। पहले जिस स्त्री को आप मुझे देने से इनकार करते थे, आपके साथ साथ उसके अब मेरे हाथ में आ जाने पर मैं क्षत्रिय, राजपूत सब कुछ बन गया। मामा जी ! असल बात यह है, जरा सुनिए—मैं अब राजपूत नहीं हूँ—मैं मुसलमान हूँ, और इस कमलकुमारी को साथ बादशाह के सामने निकाह कर इसे मैं अपना नाम दक्षिण में चमकाऊँगा फिर पर हो जाऊँगा। समझ गए ?"

इतना कह कर पुनः उसने एक असभ्यता विकट हास्य किया।

तीसरा परिच्छेद

औरंगज़ेब के सामने

उदयभानु का हर्ष उसके हृदय में न समाता था। बहुत दिनों से कमलकुमारी को प्राप्त करने की उसको इच्छा थी। परन्तु जब कमलकुमारी का विवाह वीरसिंह से हो गया तो उसकी इच्छा का कोई अर्थ ही न रहा। निराश हो औरंगज़ेब से मिल कर उसने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया और नीच कुल की मुसलमान लड़कियों से शादी की। परन्तु जिस प्रकार बिना जाने ही कोई मनुष्य कल्प-वृक्ष के नीचे पहुँच कर अपनी अभीष्ट वस्तु की अकल्पित प्राप्ति कर लेता है उसी प्रकार इस समय उदयभानु की अवस्था हुई। उसने कभी कल्पना तक न की थी कि कहीं ऐसा विलक्षण योग भी प्राप्त होगा कि जिसने पहले उसका अपमान किया था वही मनुष्य अब उसके काबू में आ जाए। ऐसी दशा में यह तमाम घटना-योग उसे बिना माँगे हुए अमृत के थाल के उपहार के समान मालूम हुआ। हाथ में आई हुई लक्ष्मी को भला कौन अस्वीकार करता है? उसने पुनः संग्रामसिंह और कमलकुमारी की ओर देखते हुए कहा, "संग्रामसिंह जी! मैं आपसे पुनः प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने मन में व्यर्थ दुःख न करें। आप अब मेरे साथ अपनी इस कन्या को ले चलिए। मुझे स्वीकार है कि मैं काक हूँ, किन्तु कितने

ही दिनों तक चूने में डुबो डुबो कर मैंने अपने पख सुफेद कर लिए हैं। इसलिये वाहर से तो मैं हंस बन ही गया हूँ। अब मुझे यह हंसी देने में आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अब इसे बादशाह आलमगीर के सामने ले चलिए। यह वाकी लोग तो विश्रान्ति की मौज लूट रहे हैं। इसलिए आप अपनी कन्या और इस दूसरी इसकी सखी को लेकर निश्चिंत भाव से मेरे साथ चल सकते हैं। और यदि यह दूसरी वापिस लौट जाना चाहे तो मैं इसके जाने का प्रबन्ध करा दूँ।"

देवलदेवी को अकेली जाना स्वीकार नहीं था। उसने शपथ खाई कि मैं कमलकुमारी को छोड़ कर कहीं न जाऊँगी। वह संतप्त हो बोल उठी, "उदयभानु! हम तुझे नीच, दुष्ट तो समझते ही थे परन्तु तेरी दुष्टता और नीचता इस पराकाष्ठा को पहुँच जायगी इसका शायद हमें कभी ध्यान न हुआ था। क्या तेरे लिये इतने मनुष्यों की जान लेना तथा सती होती हुई किसी साध्वी के कार्य में रुकावट डालना उचित है? इस भारी पाप का जवाब तू आगे जाकर कैसे देगा?"

उदयभानु ने शांत भाव से हँसते हुए कहा, "देवलदेवी! कमलकुमारी को वीरसिंह के प्रेत अथवा पादुका के साथ सती होकर जाने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि वह उसकी स्त्री नहीं है। मैंने मन में उसके पहल ही इससे विवाह कर लिया है। बल्कि कहना चाहिये, मैंने तो इसे परपुरुष के प्रेत के साथ सहगमन करने के अधर्म से बचाया है। इसलिये तुम मन में कुछ वहम न करो और न तुम्हें अब इसके साथ ही चलना उचित है क्योंकि यह अब मेरी पत्नी है। जिस सुख को प्राप्त करने के लिये मैंने अपने प्राण तक खर्च किये होते वह सुख बिना आयास ही आज मैंने पाया है। इससे मालूम हो

है कि परमेश्वर की सत्य इच्छा क्या है। मगर अब तुमसे बातें करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। सीधी बात यदि तुम न समझो तो मेरे पास इसका इलाज नहीं। अगर तुम मेरा कहना मानो तो अब न ठहरो, अपने घर जाओ। मैं तुम्हें पहुँचाने के लिये तुम्हारे साथ एक सिपाही किये देता हूँ जो तुम्हे तुम्हारे पति के पास पहुँचा देगा।"

यह कह कर उदयभानु अपने सिपाहियों के पास गया और कुछ पूछने लगा।

कमलकुमारी ने विचार किया—'यह दुष्ट अब न छोड़ेगा और नाना प्रकार के उपद्रव करेगा। ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कौन जा सकता है? जो कुछ संकट आएँगे सब झेलने पड़ेंगे। देवलदेवी को क्यों नाहक घसीटा जाय।' इसके बाद वह अपनी सखी से बोली, "देवल! तू भी क्यों अपनी जान जोखिम मे डालती है। अगर यह तुम्हें पहुँचाने को तैयार है तो तेरा चला जाना ही अच्छा है। और तेरे साथ चलने से मुझे कुछ लाभ भी नही होगा। मेरे शरीर पर जो कुछ बीतेगी उस सब को झेलना होगा ही। परन्तु तू यदि वापिस चली जाएगी तो किसी से कह कर छुटकारे का उपाय भी हो सकेगा। इसलिए मेरी बात मान कर तुम वापिस चली जाओ। पिता जी की जो कुछ अवस्था होगी सो भगवान् ही जाने।"

यह कह कर कमलकुमारी ने अपने पिता की ओर देखा। संग्रामसिंह बेसुध पड़े हुए थे। ऐसी दशा मे उसे उनके बचने मे भी संदेह होने लगा। यह देख देवलदेवी ने कमलकुमारी से कहा—"कमल! तुम कुछ भी कहो, जब तक कि मेरे शरीर मे प्राण है तब तक मैं तुम्हे हरगिज़ न छोडूँगी। अगर ये लोग मेरी हत्या कर डालें तो बात दूसरी है। पर, जब तक मैं जीवी

हूँ तब तक तुम्हें एक क्षण के लिए भी नहीं छोड सकती। जो कुछ भला बुरा नसीब म है वह साथ ही साथ क्यो न भोग ले। अगर छुटकारा पाने का समय आएगा तो दोनों साथ छूट जाएँगे।"

यह अच्छा हुआ कि इनकी बातचीत की तरफ उदयभानु का ध्यान नहीं था। वह अपने सिपाहियों को दो तीन डोलियाँ लाने की आज्ञा दे रहा था। आज्ञा देने के बाद वह इन दोनों के निकट आया और संग्रामसिंह की अवस्था के विषय में पूछने लगा।

संग्रामसिंह बिलकुल निश्चेष्ट हुए पडे थे। आसपास क्या हो रहा है, इसकी उन्हें कुछ सुध नहीं थी। उदयभानु डर रहा था कि कहीं यह मर न जाएँ। इसका कारण यह नहा था कि उनकी मृत्यु से उसे दुःख होता। वह डर इसलिए रहा था कि उनके मर जाने पर उसे औरंगजेब के सामने मेवाड के एक शूर राजपूत को बंदी बना कर लाने की शेखी मारने का मौका नहीं मिलता। अतएव, उसकी बडी इच्छा थी कि औरंगजेब के सामने पहुँचने तक कम से कम यह न मरे और इसके लिये वह प्रयत्नशील भी था। इसीलिए वहाँ से रवाना होने से पूर्व उसने उन दोनों से न बोलने का ही विचार किया और अपने साथियों से बातचीत करने के बहाने अपना समय काटा।

थोड़ी देर के बाद तीन डोलियाँ आई। उन तीनों में संग्रामसिंह, कमलकुमारी और देवलदेवी, इन तीनों के बैठने के लिए उदयभानु ने कहा। परन्तु देवलदेवी ने नहीं माना। उसने कहा कि जिस रथ में बैठकर हम यहाँ आए थे उसी में संग्रामसिंह को बिठा कर हम भी बैठेंगी। उनके पास हमारे बैठे बिना काम न चलेगा। उदयभानु ने देखा कि अवसर दुराग्रह का नहीं है।

इस समय उदयभानु बड़ी दुविधा में पड़ा। उसे यह संदेह हुआ कि कहीं बादशाह कमलकुमारी के सौन्दर्य पर लट्टू होकर उसे अपने ही जनाने में न रखलें। परन्तु, दूसरा उपाय ही क्या था ? चुप-चाप उसे बादशाह के हुक्म के अनुसार करना पड़ा और उसने उनको उसके सामने हाजिर किया।

संग्रामसिंह मरणोन्मुख थे। वह बोल भी न सकते थे। पर. कमलकुमारी ने निश्चय किया कि वह निडर होकर बादशाह से अपनी स्थिति निवेदन करेगी और उस दुष्ट की करतूत बता-कर अपने को मुक्त कर देने के लिए औरंगजेब से प्रार्थना करेगी। वह यह जानती थी कि बादशाह भी स्वयं दुष्ट है और हिन्दूधर्म का परम द्वेषी है, परन्तु जैसे डूबता हुआ मनुष्य घास का भी आश्रय ग्रहण करता है उसी प्रकार कमलकुमारी की भी इस समय दशा थी। अतएव अपना निश्चय स्थिर कर वह बादशाह के सामने खड़ी होकर बोली, "शाहंशाह ! मुझे यह स्वीकार करने में ज़रा भी आपत्ति नहीं है कि आपका धर्म अच्छा है। आपको दूसरों के धर्मों से चाहे कितनी ही घृणा हो परन्तु पतिव्रता जैसे हमारे धर्म में है वैसे ही आपके धर्म में भी है। जिस समय मैं अपने पतिव्रता-धर्म का पालन कर रही थी उसी समय इस पवित्र प्रसंग में विघ्न डालकर इस दुष्ट ने जाकर हमें गिरफ़ार किया और यहाँ ले आया। शाहंशाह ! अब उचित यही है कि आप इसे दंड देकर हम तीनों को स्वतंत्रता प्रदान करें। आपके धर्म में भी स्त्रियों के पतिव्रता-धर्म पर ज़ोर दिया गया है। मुझे आप अपनी लड़की समझ कर यह भिक्षा दीजिए। एक बार इसे शिक्षा चाहे न भी दें परन्तु मेरी मुक्ति कीजिए।"

उसका यह साहस का भाषण सुन औरंगजेब को बड़ा

आश्चर्य और कौतुक हुआ। लेकिन वह तो दुष्टों का दुष्ट था— वह इस बात को कैसे मानता ? यह अवसर ऐसा था कि उदयभानु को प्रसन्न कर उसकी कृतज्ञता प्राप्त करे—फिर भला औरंगज़ेब उसे कैसे छोड़ सकता था। एक क्षण कौतूहल से कमलकुमारी की ओर देख उसे उस बेचारी के ढाढ़स और भोलेपन पर हँसी आई। वह बोला, "ऐ परी! तेरी समझ के मुआफ़िक तेरा कहना वाजिब है। किन्तु परमेश्वर यह मंजूर नहीं करता कि तू एक झूठे धर्म के लिए अपना सुन्दर शरीर अग्नि में भस्म करदे। इस उदयभानु को ऐसा वैसा न समझना। यह बड़ा शूर, बड़ा ही चतुर और बड़ा ही दूरदर्शी है। अगर तू इससे निकाह करना चाहे तो तुझे कुछ भी पाप न लगेगा। धर्म-विरुद्ध इसमें कुछ भी नहीं है।"

इसके बाद उसने कहा, "मगर तेरे पति को मरे हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं, इसलिए यह मुनासिब ही है कि इतना जल्दी
1 विवाह करना तुझे पसन्द न हो। इसके लिए मैं तुझे तीन महीने की अवधि देता हूँ। तीन महीने तक तुझे यह किसी तरह की तक्लीफ न देने पाएगा। मेरे हुक्म का इसने अनादर किया है और मुझे इसे शिक्षा देना है। मेरी इसे यही शिक्षा है कि तेरे संग साथ तीन महीने तक रहते हुए भी यह तुझसे बात तक न करे।"

इतना कह कर औरंगज़ेब ने उदयभानु की ओर देखा। तदनन्तर उससे बोला, "उदयभानु! हुक्म की ठीक तामील न करने के सबब में मुझे तुमको वास्तव में देहान्त शिक्षा देनी ही उचित थी। परन्तु तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास तथा शुद्ध प्रेम भी है, इसलिए मैंने यही साधारण सी शिक्षा दी है। पर, अब यहीं मेरे मस्तक की शपथ लो कि दो महीने के भीतर ही कोंढाणे

पहुँच जाओगे और उसके एक महीने बाद तक, यानी आज से तीन महीने तक इससे कोई बात न करोगे । पूरे तीन महीने बीतने पर उसी दिन रात के बारह बजे, अगर तुम्हारी इच्छा हो तो काजी को बुलवा कर इसके साथ निकाह करा लेना । उसके पहले अगर कुछ गड़बड़ करोगे तो याद रक्खो कि आलमगीर क्षमा करना नहीं जानता—वह तुम्हारे रत्ती रत्ती टुकड़े कर डालेगा, और नहीं तो तुम्हे, जीते ही को, गीदड़ों और कुत्तों को खिला देगा ।"

इस प्रकार समझा कर बादशाह ने उससे शपथ लेने को कहा । जब उदयभानु शपथ ले चुका तो वह फिर हँसकर बोला "इस शपथ तथा तीन महीने की अवधि का यही हेतु है कि तुम तीन महीने तक अपना काम अच्छी तरह करो । वहाँ पहुँचने के बाद एक महीना तक तो खूब अच्छी तरह काम करना तुम्हारे लिए बिलकुल लाज़िमी है । इस बात का ध्यान रहे कि जिस तरह और जो काम तुम करो उसकी मुझे फ़ौरन खबर मिलती रहे ।"

इसके बाद पुनः उसने कमलकुमारी की ओर देखा और कहा, "बेटी ! जाओ, क्रूरता से अपना देह भस्म करना ठीक नहीं है और न बादशाह ही तुझे इसकी अनुज्ञा दे सकता है । और देखो, इस उदयभानु को बददुआ मत देना बल्कि उसके कल्याण का ही चिन्तन करना । तीन महीने बाद तुम ख़ुद समझने लगोगी कि जो कुछ मैंने किया सो अच्छा ही किया है । ठीक तीन महीने कब खत्म होते हैं यह जानने की तुम्हारी इच्छा होगी । मगर तुम मुसलमानी तारीख न समझोगी । इसलिए ज़रा ठहरो, किसी पंडित से पूछ कर तुम्हारे ही संवत् के मुआफ़िक तुम्हें तारीख बता दूँगा ।"

यह कह कर उसने एक पंडित को बुलवा भेजा और जब पंडित आगया तो उससे पूछा कि—आज कौन सी तिथि है। जब पंडित ने कार्तिक वदि नवमी बतलाई तो बादशाह ने हँसकर दुष्टता से नेत्र संकुचित करते हुए कहा, "कमलकुमारी! माघ वदि नवमी के रोज तीन महीने पूरे होंगे। उसी दिन प्रथम पति के निमित्त तुम्हें अपना पतिव्रता धर्म समाप्त करना होगा।" तदनन्तर वह उदयभानु से बोला, "और उदयभानु! अगर माघ वदि नवमी के पूर्व तुमने इसे छेड़ा तो तुम्हारा शपथ भंग होगा। इस लिए इस तिथि को अच्छी तरह याद रखना। अब तुम कमलकुमारी को अपने साथ ले जाओ। संग्रामसिंह को यहीं रहने देना। मैं उसे तंदुरुस्त करा दूँगा और फिर उसे क्या करना होगा सो देखा जायगा। अच्छा तो अब जाओ, मगर परसों सुबह तुम्हें दिल्ली में रहना मुनासिब नहीं होगा।"

'कमलकुमारी को लेजाओ और संग्रामसिंह को यहीं रहने दो,' यह सुनते ही कमलकुमारी के शरीर पर मानो वज्र गिर पड़ा और बड़े शोक-पूर्ण शब्दों में उसने इस बुरी दशा में उन दोनों को अलग न करने के लिए बादशाह से प्रार्थना की। परन्तु लाभ क्या था? बादशाह कपट—भरी आवाज़ में बोला—'हां, चिन्ता क्यों करती हो? तुम्हारे पिता को तुरन्त तंदुरुस्त करा कर उसे तुम्हारे विवाह के लिए चित्तौड़ के क़िले में भिजवा दूँगा।"

यह कह कर संग्रामसिंह को उसने कहीं अन्यत्र भिजवा दिया। निराश होकर कमलकुमारी उदयभानु के साथ चल दी।

यह घटना कमलकुमारी के सती होने के लिए जाने के पन्द्रह रोज पहले हुई। दिल्ली में उदयभानु ने उसे अपने ही मकान में रक्खा था।

इधर कमलकुमारी, देवलदेवी और संग्रामसिंह के क़ैद होने की बात उनके घर पहुँची। बुरी बात हमेशा वायु की गति की तरह फैलती है। यद्यपि सतीपक्ष के सब आदमी मारे गए थे तथापि एक भील ने, जो यह सब देख रहा था, सीमा पर जाकर सब हाल कह दिया। और ज्यों ज्यों वह भील वहाँ से आगे बढ़ा, यह खबर भी और अधिक फैलती गई। उसका हाल सुनते ही सब लोग संतप्त होगए। किन्तु किया ही क्या जासकता था; क्योंकि उदयभानु तमाम दलबल सहित दिल्ली पहुँच चुका था। राजसिंह ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने अपने आदमी भेजे, परन्तु शत्रु भाग गया था। अंत मे क्रोध-विवश हो उन्होंने औरंगजेब को एक पत्र लिखा, जिसका आशय इस प्रकार था:—जब कोई राजपूत स्त्री सती होने जारही हो उस समय उसे हरण कर लेना बड़ी नीचता की बात है। आप बादशाह हैं, आपको उचित है कि अपराधी को कठोर दण्ड दें।

यह पत्र किसी जासूस के हाथ भिजवा दिया गया।

जिस दिन कमलकुमारी को बादशाह ने उदयभानु के अधिकार मे किया उसी दिन संध्या समय वह पत्र उसे मिला। उसे पढ़कर उसने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले और मनमे कहा, "हरामजादा! एक बार जीत गया, इसीलिए ऐसे पत्र लिख रहा है। अच्छा देख लूँगा। अगर मै सचमुच आलमगीर हूँ तो मेवाड़ वंश का पूरा विध्वंस करके छोड़ूँगा।"

राजसिंह का जासूस आने के एक दिन पहले एक दूसरा जासूस मेवाड़ से दिल्ली आया था। उसने भी उदयभानु के गिरोह को तलाश किया। किसी दैवयोग से, जिस दिन वह राजपूत आया उसके दूसरे दिन ही बादशाह ने उदयभानु को बुलाया और उसे संग्रामसिंह तथा कमलकुमारी, दोनों को, उपस्थित

करने की आज्ञा दी। उदयभानु अपने मकान पर जाकर उन्हें लेजाने की तैयारी कर ही रहा था। दो तीन पालकियाँ दरवाजे पर रक्खी हुई थीं—कि इतने में वही राजपूत इत्तिफाक से उस तरफ से निकला। उसी समय देवल देवी ने, जो कमल—कुमारी को पहुँचाने के लिए बाहर आई थी, उसे देखकर पहचान लिया और उसे ठहरने के लिए इशारा किया। यह अच्छा हुआ कि किसी ने उस इशारे को देखा नहीं। उदयभानु के चले जाने के बाद देवलदेवी ने ऊपर की मंजिल पर जाकर एक चिट्ठी लिखी और परदे की आड़ से उसे उस राजपूत के शरीर पर फेंक दिया।

राजपूत ने उस चिट्ठी को उठा लिया और उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—कल फ़कीर के वेश में दो बजे यहीं आओ। रोटी दूँगी। उसमें एक चिट्ठी रहेगी और उससे सब कुछ तुमको विदित होजायगा।

जब संध्या समय देवलदेवी चिट्ठी लिखने बैठी तो पत्र का कलेवर बहुत ही बढ़ गया। परन्तु इस बात की कोई परवा न करके उसने उस चिट्ठी को रोटी में रख दिया।

दूसरे दिन उसने बहाना किया कि हर दशमी के दिन मैं दो समय रोटी बना कर एक सुबह के वक्त और दूसरी शाम को अपने हाथ से किसी फकीर को दिया करती हूँ। इस प्रकार अगले रोज ठीक समय पर उसने वह रोटी उस फ़कीर को देदी और संध्या समय पुनः आने को उससे कहा। जब दुबारा वह फकीर आया तो रोटी लेते समय छिपाकर उसने एक चिठ्ठी उसके पैर तले डालदी।

परन्तु, यह राजपूत कौन था और उस चिट्ठी में क्या लिखा था यह आगे मालूम होगा।

उसी रात को, जब चन्द्रमा का उदय हुआ, उदयभानु कमलकुमारी और देवलदेवी को साथ ले दक्षिण की ओर चल दिया।

चौथा परिच्छेद

विवाह का निमंत्रण

उमराठे गाँव बहुत छोटा था। परन्तु उस गाँव में माघ शुदि नवमी के रोज़, अर्थात गत परिच्छेद में जो घटनाएँ हुईं उसके ढाई महीने बाद, बड़ी धूम मची हुई थी। कोकण की आबादी बहुत घनी नहीं थी। परन्तु वह गाँव अब तानाजी मालुसरे के, जो शिवा जी का दाहना हाथ था, क़ब्ज़े में था। इसलिए उसकी जनसंख्या बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त और भी एक कारण था। सूबेदार तानाजी किसी काम के लिए महाराज से अनुमति लेकर यहाँ आए थे। इसलिए, नज़दीक के गाँवों में से और लोग भी उनके साथ आगए थे। साथ ही अन्यान्य बारगीर, जमादार आदि भी सूबेदार के साथ आगए थे जिससे उस गाँव में मानो एक छोटी सी छावनी होगई थी। अपने ही गाँव का रहनेवाला तानाजी एक सूबेदार हुआ है और शिवा जी के गले का हार बन गया है, यह गाँववालों के लिए एक बड़े अभिमान और हर्ष की बात थी। उसकी वीरता की बातें सुनकर वृद्ध लोग कौतुकान्वित होते थे और नोजवानों को यह आशा बँधती थी कि हम भी तानाजी के हुक्म के अनुसार महाराज के लश्कर में रहकर एक दिन तानाजी की तरह ही सूबेदार बनकर अपने गाँवों में लौटेंगे, छोटे छोटे बच्चे

तानाजी, शिवाजी, मुगल बादशाह, बीजापुर का बादशाह आदि व्यक्तियों की भूमिका लेकर राज्यस्थापना करने के लिए किले अधिकृत करने का खेल खेला करते थे। यह वर्णन करना असंभव है कि वह ग्राम एक बडे शूरवीर पुरुष की जन्मभूमि होने के कारण वहाँ के लोगों में कितना आत्माभिमान जागृत हुआ और कितनी बडी आकांक्षाएँ उत्पन्न हुईं। इस समय उस ग्राम में यह प्रधान व्यक्ति थोडे ही दिन विश्राम करने पाया था कि 'उसे एक बार देखें, यदि उससे एक बार बातें करने का अवसर मिले तो बडा अच्छा हो, न हो तो उसके मुँह से महाराज की कथाएँ ही सुनें' आदि कारणों से आज पन्द्रह बीस रोज से तानाजी के घर में, आए हुए लोगों की भीड लगी हुई थी। और, आज तो, माघ शुदि ९ के रोज,गाँव के सब लोग तानाजी के बाडे में इकट्ठे होरहे थे। सब लोगों के चेहरों पर आनंद—केवल आनंद—छाया हुआ था। सूबेदार तानाजी अपने वस्त्र पहन कर, घोडे पर सवार, भाला बरछी हाथ में लिए हुए एक अति वृद्ध मनुष्य से—जो उन्हीं की तरह एक दूसरे घोडे पर सवार था—बातचीत कर रहे थे। उनके पास, लगभग आठ वर्ष की उम्र का एक बालक ताना जी के समान ही वस्त्र पहने हुए हाथ में छोटे छोटे हथियार लिए एक छोटे से घोडे पर सवार होने को कोशिश कर रहा था। उस बालक के तथा तानाजी के चेहरे में इतना साम्य था कि, इन दोनों में पिता पुत्र का सम्बन्ध है, यह बताने की जरूरत ही न थी। रायबा—यही उस छोटे सरदार का नाम था—मुखाकृति में अपने पिता की प्रतिमा ही था। चाल-स्वभाव के अनुरूप, वह अपने पिता का अनुकरण करना चाहता था। इसीलिए उसने पिता के समान ही कपडे पहने और अश्व के ऊपर सवार हो उनके साथ जाने का हठ किया।

अपने साथ लेकर युद्ध को चलिए। महाराज के एक ओर पिता जी और दूसरी ओर मैं लड़ाई लड़ने के लिए जाएँगे, और मैं इस तरह अपनी तलवार लेकर चलूँगा।"

उस समय उस बालक का अभिनय तथा उसे अपनी छोटी तलवार उठाते हुए देख कर सब लोग आश्चर्य करने लगे। वृद्ध उसे घोड़ पर बैठा देख कर वृद्धा स्त्री से बोला, "जानकी! अब यह न सुनेगा। क्यों इसे रख लेने का वृथा प्रयत्न करती हो? चलने दो इस शैतान को। एक बार जाकर देखेगा कि कितनी तकलीफ वहाँ उठानी पड़ती है, तब फिर कभी न कहेगा कि मैं भी चलूँगा। हाँ, जरा सुन लो बच्चा जी! जब एक दिन भूखे रह लोगे तो मालूम होगा कि इसमें क्या सुख होता है। तानाजी! अब क्यों गप्पें मार रहे हो? चलो न।"

इस वृद्ध पुरुष की आयु अस्सी वर्ष के ऊपर थी। पर, उसका शरीर जवान का जैसा कसा हुआ और मजबूत था। उसके बाल सुफेद हो गए थे—बस, इतना ही वृद्धावस्था का चिह्न उसमें दिखाई देता था। उसकी दृष्टि गिद्ध के समान तेज थी, दाँत सब मजबूत, और बदन में चपलता ऐसी जैसी कि पचीस वर्ष के नौजवान में रहती है। यह व्यक्ति तानाजी का मामा था। गाँव के लोग उसे 'शेलारमामा' कह कर पुकारते थे और उसकी बहन, तानाजी की माता, भी उसे विनोद में इसी नाम से पुकारा करती थी।

शेलारमामा ने तानाजी से ऊपर की बात कह कर अपने घोड़े को इशारा किया और आगे बढ़ने के लिए उत्सुकता दिखाई। तानाजी ने अपनी माता को विनीत भाव से प्रणाम किया और सब उपस्थित जनों से एक बार राम राम कर अपने बेटे से बोले,

'हाँ, चलिए, रायबा सरदार !" रायबा ने भी बड़ी उत्सुकता से अपने घोड़े के एड़ लगाई।

जब वे चल दिए तो उपस्थित लोगों में से कुछ ने चिल्ला कर कहा, "देखो, तानाजी ! महाराज से खूब आग्रह करना, उन्हें यहाँ लेते ही आना। हम सब आपकी राह देखेंगे। महाराज के चरण हमारे गाँव को अवश्य लगने चाहिएँ। देखना है, आपका वहाँ कितना प्रभाव है। और शेलारमामा ! अजी ओ शेलार-मामा ! आप जा तो रहे हैं लेकिन वहाँ से अपयश लेकर न आना। हम सब बैठे आपकी राह देखेंगे। जब आओ तो, महाराज आ रहे हैं, यह खबर लेकर आना। नहीं तो आओगे तो कुछ .... !"

शेलारमामा ही की उम्र वाले एक वृद्ध ने चिल्ला कर कहा, "ए शेलारमामा, महाराज से कहना कि हमारे गाँव के तथा पास के गाँव के लगभग १००० वारगीर अपनी तरफ होंगे, उनकी सेवा ध्यान मे रख कर वह यहाँ पधारने की कृपा करें। मना न करें।"

शेलारमामा ने उत्तर दिया, "अजी कल्लू साहब ! आप क्यों फिक्र कर रहे है। अगर निमन्त्रण देने पर महाराज ने आने से इंकार किया तो मै चुपचाप बैठने वाला आदमी नहीं हूँ। मैं उनसे आग्रह करूँगा—कहूँगा, 'महाराज, आपको हमारे ग्राम मे अवश्य चलना चाहिए। मै अस्सी वर्ष का बुड्ढा आपके पिता के समान हूँ; मेरे तीनो बेटे आपकी सेवा मे है,—यह ताना तो हाथ मे सिर लिए आपके यहाँ खड़ा रहता है। तिस पर भी चलने से इकार करते हैं ! क्या आपका यह कहना है कि हम लोग काला मुँह लेकर यहाँ से वापिस जाएँ ? फिर लोग क्या कहेंगे ?' कल्लू जी ! मै बिना हलचल किए न रहूँगा। स्वामी की रात दिन सेवा करें और स्वामी हमारी विनय को स्वीकार न करें ! क्या शिवा जी महाराज इस तरह 'नहीं' कर सकते है। आप अच्छी तरह

तैयारी करके रखिए। वे रायबा की शादी में शरीक होने के लिए अवश्य यहाँ पधारेंगे—यह निश्चय समझो। मेरा भी नाम शेलारमामा है—मैं कभी अपयश लेकर वापिस आने वाला नहीं। उसी समय, जाते ही, कह दूँगा कि दस बारह दिन पहले ही आपको निमन्त्रण देने आए हैं। इसलिए जो कुछ यहाँ करना हो उसकी पहले ही व्यवस्था कर दीजिए। हमारे गाँव में चलकर, चाहे थोड़े ही दिन सही, आपको रहना जरूर पड़ेगा।"

कल्लूराम शेलारमामा के यह वाक्य सुन मन में खुश तो जरूर हुए, परन्तु शेलारमामा को खूब चिढाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। बोले, "अजी साहब! यहाँ तो बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बनाते हो, पर बातों के अनुसार काम करो तभी है। जनाब! शिवाजी महाराज को बहुत कार्य करने हैं। दे देंगे कुछ पुरस्कार और फिर उसी में खुश होकर लौट आओगे घर—और क्या।"

"हाँ, हाँ, रहने दो। शिवाजी को इकार करने तो दो, फिर बताऊँगा उन्हें। कहूँगा, 'अगर आप हमारी बात नहीं सुनते हैं तो हम भी आपके लिए क्यों जान दें?' अजी उनकी ताकत नहीं 'ना' कहने की। उनके बाबा तक से मैं नहीं डरता, फिर उनसे तो क्या डरूँगा। मेरी विनती को वह अवश्य स्वीकार करेंगे और अवश्य आवेंगे। आप निश्चिन्त रहिए।"

यह प्रतिज्ञा सुन कल्लू जी को समाधान हुआ। उन्हें निश्चय हो गया कि अब शेलारमामा शिवाजी महाराज को लिए बिना न आवेंगे। और सब लोगों को भी भरोसा हो गया। अपने गाँव में तानाजी के यहाँ की शादी के लिए शिवाजी आने वाले हैं यह सुनकर हर एक हर्षित हुआ। महाराज का स्वागत किस तरह करना चाहिए, गृह कैसे सजाना होगा, झंडी पताका आदि किस

प्रकार लगाए जाएँ, आदि विषयों पर आपस में विचार होने लगा। लोगों का विश्वास था कि शिवाजी महाराज शिव का प्रत्यक्ष अवतार हैं। मुग़लों ने देश को बहुत कुछ सताया—इसलिए ग़रीब दुखियों की रक्षा करने के लिए शिवाजी के रूप में प्रत्यक्ष काशी-विश्वनाथ ने अवतार लिया है। सब लोगों के हृदय में उनके प्रति इतना अधिक पूजा का भाव था कि जिस गाँव में वह जाते उसका बड़ा ही भाग्य समझा जाता था और प्रत्येक मनुष्य यह चाहता रहता था कि महाराज हमारे ग्राम में आवें और हम उनकी पवित्र मूर्ति का दर्शन करें। सारांश यह कि उमराठे गाँव में रहने वाली जनता को अत्यन्त हर्ष हुआ और तानाजी, शेलारमामा और रायबा के राजगढ़ जाने के पहले और बाद में कितने ही दिनों तक बराबर शिवाजी महाराज का भावी आगमन ही लोगों की बातचीत का विषय था! सुबह के समय सोकर उठने से लगाकर रात को सोने जाने के वक्त तक प्रत्येक व्यक्ति को मानो महाराज का ही ध्यान रहता था। और जब यह सुवार्ता वहाँ से लगभग तीस चालीस कोस दूर रहने वाले लोगों के पास पहुँची तो वे भी शिवाजी का दर्शन करने के लिए आने का विचार करने लगे।

परन्तु, हम इन लोगों को यहीं आनन्द मनाते छोड़ अब महाराज को निमन्त्रण देने के लिए जाने वाले शेलारमामा, ताना जी और रायबा के साथ राजगढ़ चलेंगे।

ये तीनों व्यक्ति ऊपर लिखे अनुसार कपड़े पहन तथा हथियारों से सुसज्जित हो आगे आगे चल रहे थे। उनके पीछे कोई दस सिलेदार और चालीस बारगीर जा रहे थे। वास्तव में इतने आदमियों की आवश्यकता तो नहीं थी, परन्तु कुछ लोगों का साथी होना अच्छा समझ उन्होंने मनुष्य साथ ले लिए थे।

ये तीनों आगे जा रहे थे। तीनों अपने मन में एक ही मूर्ति का ध्यान कर रहे थे—मानो वृद्धावस्था, तारुण्य और बाल्य, तीनों अवस्थाएँ, मनुष्य का रूप धारण किए हुए उस समय जा रहीं थीं। शेलारमामा अस्सी वर्ष के, ताना जी चालीस के और रायबा आठ वर्ष का था।

वे तीनों अपने अपने मन में शिवाजी महाराज के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे—'जब कि हम लोग स्वयं ही आए हैं तो शिवाजी महाराज अवश्य ही हमारी विनती स्वीकार करेंगे। हम उनसे साफ़ और खुले तौर से कहेंगे, उनकी माता जीजाबाई से कहेंगे, और उसे भी साथ लेते आवेंगे।' इस प्रकार के विचार शेलारमामा के मन में दौड़ रहे थे। ताना जी सोच रहे थे—'महाराज न मालूम किस चिन्ता में मग्न होंगे, पहुँचते ही क्या खबर सुननी होगी, दिल्ली का बादशाह कौन सी चाल चलता होगा, बीजापुर का हाल हवाल क्या होगा' इत्यादि। और रायबा तो निरा बालक ही था। वह इस फ़िक्र में पड़ा हुआ था कि किस प्रकार पिता का हर एक बात में अनुकरण किया जाय, 'पिता ने लगाम को इस तरह पकड़ रक्खा है मैं भी वैसे ही पकड़ूँगा। वह बरछी को इस प्रकार हाथ में ले रहे हैं। मैं भी उसी तरह हाथ में ले लूँगा। फिर कभी कभी 'शिवाजी' महाराज कैसे होंगे, वह मुझसे क्या कहेंगे, मैं उनकी बात का किस प्रकार उत्तर दूँगा' आदि प्रश्न भी उसके छोटे से मस्तिष्क में घूमते। इसी प्रकार यह तीनों लोग चल जा रहे थे।

ताना जी को उस प्रदेश के सब लोग मानते थे। इसलिए रास्ते के ग्राम में जितने गाँव आते वहाँ के लोग उनका खूब खातिर करते और शिवाजी से विशेष रूप से आग्रह करने के लिए कहते रहते। रायबा छोटा था, राजगढ़ तक एक ही साथ यात्रा

करने की उसमें शक्ति नहीं थी और न राजगढ़ पहुँचने के लिए उनको बहुत जल्दी ही थी। इसलिए मार्ग में तीन स्थानों पर मुकाम करने का इरादा कर के वे चले थे।

उन्होंने पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ना आरम्भ किया। दो कोस तक किसी ने कोई बातचीत नहीं की। तब तानाजी शेलारमामा से बोले, "मामा जी! मेरी तो यही हार्दिक इच्छा है कि परमात्मा इस महापुरुष को दीर्घायु करें। फिर देखो कि यह किस तरह मुग़लों की चटनी बना कर स्वराज्य स्थापित करता है। जिस प्रकार महाराज रामचन्द्र जी ने प्रजा को सुख दिया था उसी प्रकार यह भी प्रजा को सुख देगा। हमतो उसके छुटपन के दोस्त है—बस, हमारी तो तभी से यह इच्छा रही कि यह हमें आज्ञा करे और हम उसकी आज्ञा का पालन करें। हम उसी समय से उसे राजा कहते हैं। उसकी एक एक बात जब ध्यान मे आती है तो कैसी उमंग सी उठती है और हृदय इतना हर्षित होता है कि खास भाई का भी नहीं हो सकता। अभी मुझे उस बात की याद आ गई। हम छोटे थे, कोई अठारह उन्नीस वर्ष के—सुलतानगढ़ लेने के कुछ ही दिन पूर्व—जब कि हमने स्वराज्य का मंसूबा बाँधा था। उस समय पुरन्दर के क़िले पर श्रीधर स्वामी को उन मुसल्लों ने कैद कर लिया। उस समय उनको छुड़ाने के लिए महाराज ने ऐसी तरकीब चलाई कि—वाह! हमतो आश्चर्यचकित रह गए। उसी तरह अभी अफज़ल ख़ाँ रूपी कंटक का किस प्रकार उन्मूलन किया! हरामज़ादा कहीं का! महाराज का प्राणहरण करने के लिए कैसा कपटजाल रचा, कितनी दग़ाबाज़ी की, कैसी मीठी मीठी बातें बनाईं। चाहता था कि महाराज को असावधान पाकर अपना काम तय करें। पर महाराज भी पूरे उस्ताद थे। उन्होंने विचार किया कि

इन हरामियों का भरोसा क्या ? गो के सामने भोजन रख कर उसे काटने वाले ये लोग हैं। इनसे हमेशा सावधान ही रहना चाहिए,—न मालूम कब कौन सी घटना हो जाए। क्यों, शेलारमामा जी !"

शेलारमामा ने उत्तर दिया "ठीक है। ठीक ही तो किया महाराज ने। फिर क्या हुआ ?"

"महाराज की यह सावधानता काम आई। अफजल खाँ मद से उन्मत्त हो महाराज को तिनके के समान समझता हुआ आया और भेंट के बहाने महाराज की गर्दन पकड़ कर बगल में दबाने लगा। परन्तु महाराज पूरे तौर से सावधान थे। तुरन्त उन्होंने उचित कार्य कर अफजलखाँ का घात किया। मैं उस समय वहीं मौजूद था। किसी भी कार्य में, किसी भी संकट में घबड़ाना तो वे जानते ही नहीं। बस, नौकरी अगर करनी हो तो ऐसे ही राजा की करे। मामा जी ! अगर महाराज मुझसे कहें कि इस चट्टान से नीचे कूद पड़ो तो मैं बिना किसी विचार के फौरन कूद पड़ूँगा। शिवाजी की सेवा में मुझे मृत्यु प्राप्त हो तो कितने हर्ष की बात है। मगर, जब कभी साहस का काम होता है तो महाराज उसे स्वयं ही करते हैं। इस बार अगर कोई महत्त्व का काम निकला तो मैं उनसे कहूँगा कि आप कुछ न कीजिए, मैं ही इस काम को करूँगा। मामा जी ! हम जैसे लोगों को अगर मृत्यु आ जाए तो सैकड़ों लोग आगे बढ़ेंगे, पर महाराज की जान जोखिम में पड़ने से और आश्रितों का क्या हाल होगा।—आप ही बताइए।"

इस पर शेलारमामा बोले, "हाँ सच तो है। मैं भी उन्हें यही सलाह दूँगा कि आप अब मुझको हुक्म दीजिए। पर, तानाजी, क्या महाराज रायबा की शादी के लिए आवेंगे ? अब ऐसा विचार

होता है कि जानकी जीजाबाई से प्रार्थना करने के लिए आतो तो अच्छा होता। बहुत दिनों से मैंने उन्हें देखा नहीं। खैर, अब कहूँगा कि धन्य हो माता जिनके पेट से यह शिवाजी नहीं, प्रत्यक्ष महादेव जी उत्पन्न हुए हैं—विश्वनाथ जी उत्पन्न हुए हैं। अरे रायबा! क्यों बेटा! थक तो नहीं गया? पहले कहता था कि मैं यों करूँगा, यों करूँगा। उस समय भी मैं कहता था कि साथ न चलो—तकलीफ न उठाओ—पर सुनता कौन?"

रायबा थोड़ा होशियार होकर बोला, "क्या कहते हो? मैं थक गया! मुझे तो थकावट बिलकुल भी नहीं मालूम होती। अजी मैं तो अभी पन्द्रह कोस और साथ चल सकता हूँ। पिता जी! मैं थका हुआ मालूम होता हूँ क्या?"

सर्दी के दिन थे, परन्तु कोंकण में ऐसी ठंड नहीं होती जैसी कि और जगहों में होती है। इतने पर भी वह लोग दिन निकलने के बाद बहुत देर से निकले थे। धूप कड़ी पड़ने लगी और थोड़ा थोड़ा जी भी घबराने लगा। परन्तु शेलारमामा और ताना जी धूप की परवाह नहीं करते थे। अगर जरूरत होती तो वे वैसी ही धूप में और भी पचीस कोस चले जा सकते थे। किन्तु उनके साथ में बालक था, इसलिए उन्हें धीरे धीरे चलना पड़ता था। हरियाली छाया में ठहर जाते, रायबा को कुछ खाने के लिए देते. उसकी हँसी उड़ाते, और थोड़ी देर आराम करके फिर आगे को चल देते। बस, इसी प्रकार यात्रा करते हुए पहाड़-पहाड़ी चढ़ते-चढ़ाते तीनों जन अपनी मंडली के साथ राजगढ़ के निकट आ पहुँचे। शिवाजी महाराज उस समय राजगढ़ में थे और संयोग से उनकी माता भी प्रतापगढ़ से वहीं आई हुई थीं। गढ़ की तलैटी में यह खबर उन्होंने पाई तो शेलारमामा हर्ष से फूले न समाए।

गढ़ के नीचे आते ही, रिवाज के अनुसार पहले ऊपर

खबर पहुँचवाइ गई और फिर तीनों लोग धीरे धीरे ऊपर चढने लगे। शिवाजी महाराज इस समय किस कार्य में मग्न होंगे ?—पहुँचते ही हमसे क्या कहेंगे ?—आदि प्रश्न इस समय उनके मन में तर्क वितर्क उत्पन्न कर रहे थे। शेलारमामा इस विचार में थे कि शिवाजी के सामने पहुँचकर उनसे क्या कहें और कैसे कहें।

इतनी मंजिल चढने के बाद रायबा के लिए गढ पर चढना असम्भव था और न यह उचित ही था कि उसे चढने दिया जाता। इसलिए उसे एक नौकर के कंधे पर बिठा दिया गया था। रायबा ऊपर पहुँचने को इतना उत्सुक हो रहा था कि वह चाहता था कि नौकर, पिता और मामा चौगुने वेग से दौड कर एकदम महाराज के सामने पहुँच जाएँ।

अंत में मंडली ऊपर पहुँची। तानाजी आए हैं, यह खबर चोबदार से सुनते ही महाराज ने तुरन्त उन्हें पास भेज देने की उसे आज्ञा दी। इतने में वे सब सामने आकर खडे हुए। शेलार-मामा झुककर उन्हें रामराम करना चाहते थे कि महाराज उठे और एकदम उनका हाथ पकडकर बोले, "मामा साहब! राजा तो हम जरूर हैं परन्तु आपके नहीं हैं। हम तो आपके छोटे बच्चे के समान हैं। आप हमारे पिता के सदृश हैं। आपही के आशीर्वाद से हम इस बडे पद को पहुँचे हैं। आइए ऊपर इस गद्दी पर विराजिए।"

शेलारमामा को महाराज ने दाहिनी ओर बिठाया। यह आदर देख वृद्ध मामा को अति आनन्द हुआ और उनकी आँखें प्रेम के आँसुओं में डबडबा आईं। उसी प्रेम में महाराज की पीठ पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "शिवाजी महाराज! हम तो गरीब आदमी हैं, केवल हमारी वृद्धावस्था को देखकर आप हमारा इतना आदर करते हैं। मेरा आशीर्वाद है कि आप कभी

अपयश न पाएँगे। जिनको देश के वृद्धों के आशीर्वाद मिलते हैं उन्हें अपयश कभी छूता तक नहीं। मैं आज आपको निमंत्रण देने आया हूँ। रायबा आओ, महाराज को प्रणाम करो। महाराज! यह आपके तानाजी का लड़का है। जानकीबाई ने इसका ब्याह करना निश्चित किया है और शादी होगी इसी महीने की वदि नवमी को। आपको उसमें जरूर आना होगा और चार दिन बाद लग्नविधि को शोभा देनी होगी। देखिए. हम ग़रीब हैं पर मना मत करना।"

शेलारमामा इधर यह कह रहे थे और उधर रायबा महाराज के चरणों पर गिर पड़ा। उसकी वह कोमल छबि देखकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए और उसे अपनी गोद में लेकर बोले, "वाह! तुम तो हमारे छोटे सूबेदार हो। क्यों जी, क्या अपनी शादी का निमंत्रण खुद ही देने आए हो? अच्छा देखें तो तुम्हारी तलवार कैसी है।"

इतना कह महाराज ने उसकी तलवार को स्पर्श किया। इतने में रायबा के मन में न मालूम क्या आया—वह बोल उठा, "महाराज! मुझे एक असली तलवार दिला दीजिए। जी चाहता है कि पिता जी के साथ जाकर मैं भी मुग़लों से लड़ पड़ूँ।"

"ठीक! तब तो खूब बनेगी। हमने तुम्हें 'छोटे सरदार' कहा सो उचित ही कहा। तानाजी! यह तो आपसे भी तेज़ दिखाई देता है। इस समय क्या इसकी शादी है? कल माताजी भी आपको याद करती थीं।"

"सरकार! माता जी और आप जो कुछ फर्माएँगे उसे करने को मैं हाज़िर हूँ। अभी, इसी घड़ी, कुछ करने को हो तो आज्ञा दीजिए।"

"इस घड़ी तो मेरा यही हुक्म है कि जल्दी स स्नान भोजन की तैयारी में लगो। इसके बाद इस विषय पर बातचीत होगी। ऐ! किसी ने माता जी को खबर पहुँचाई कि नहीं?"

महाराज इस प्रकार एक तरफ बातचीत भी करते जाते थे और दूसरी तरफ लड़के से भी बोल रहे थे कि इतने में एक मुहर्रिर ने खबर दी कि एक जासूस आया है और महाराज से मिलना चाहता है। महाराज तुरन्त उठे और अपने खास महल के एक कमरे में चले गए।

पाँचवाँ परिच्छेद

उड़िसा में

औरंगजेब के कड़े हुक्म के सामने उदयभानु क्या कर सकता था ? भाग्य के जोर से जैसे-तैसे बच गया, नहीं तो बादशाह की ज़रा सी इच्छा से रसातल को भी जाना पड़ता, शायद वह जान से मरवा डालता—या, कौन कहे क्या करता। उदयभानु ने सोचा कि जिस तरह बन पड़े यहाँ से जल्द ही निकल चलना चाहिए और तदनुसार, जिस तरह तीसरे परिच्छेद में कहा जा चुका है, वह दिल्ली छोड़ कर चला। साथ में कमलकुमारी भी थी। बादशाह ने मेरे साथ बड़ी निराशा का काम किया, नहीं, तो आज, न मालूम मैं किस सुख की अवस्था में होता—यह विचार बारबार उसके मन में आता और उसे पश्चात्ताप होता। उसने अपनी कृति के ऊपर अनेक बार खेद किया। अगर इतनी अक्ल न लड़ा कर कमलकुमारी और इस बुड्ढे को औरंगज़ेब के सामने हाज़िर न करते तो—फिर, जो चाहे सो करते—खुदमुख्तार तो हम ही थे। उस समय कौन पूछने आता ? परन्तु उदयभानु तो चाहता था कि राजपूतों को पकड़ने के लिए कैसे कैसे प्रयत्न किए—यह बादशाह के सामने ज़ाहिर करे, यहाँ तो सब मामला ही उलटा हो गया। उसे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। फिर उसने सोचा कि मार्ग में अब हम जो चाहे सो करें। औरंगज़ेब से कहने कौन

जाएगा। और ऐसा करने के लिए उसने कुछ थोडा बहुत उपक्रम शुरू करना भी चाहा। किन्तु दूसरे ही क्षण एक दूसरा विचार आया। औरंगजेब बडा वहमी है। कौन जाने, उसने यह जानने के लिए कि हमारे हुक्म के मुताबिक काम होता है या नहीं, मेरे ऊपर खुफिया लोग नियुक्त कर दिए हों। मन में यह विचार कर उदयभानु ने थोडे दिनों के लिए यह उपक्रम बन्द कर दिया और जितनी जल्दी हो सका उतनी जल्दी यात्रा करके वह दक्षिण की ओर गया। उसका अभिप्राय यह था कि खूब जल्दी वहाँ पहुँचने पर एक बार बादशाह को यह लिख दिया जायगा कि आज्ञानुसार सब काम हो रहा है। साथ ही, धीरे चलने में एक डर और भी था। शायद मार्ग में किसी राजपूत सेना से मुठभेड हो जाए और इस गडबड में कमलकुमारी को कोई भगा कर ले जाए। अथवा, यदि कोई सेना न भी मिले तो सभव है कि कमलकुमारी का ही कोई हितैषी गुप्त रूप में आकर मेरा खून कर डाले। इस प्रकार के तरह तरह के कुतर्क उसके मन में आकर उपस्थित होने लगे और उदयभानु ने यही निश्चय करना उचित समझा कि तुरन्त इस प्रदेश से दक्षिण को चले जाएँ। वहाँ फिर, अपने मालिक आप ही हैं।

जिस समय कोई मनुष्य कोई अनुचित काम कर बैठता है तो कारण न होने पर भी उसे सदा डर ही लगा रहता है। वास्तव में, उदयभानु के डरने का आज कोई कारण नहीं था। साथ में चार हजार सेना होने पर भी उसका भय करना कि मार्ग में अपने ऊपर कोई चढाई न करदे और कमलकुमारी को भगा न ले जाए बिलकुल व्यर्थ था। इसी प्रकार यह डर भी कि गुप्त रीति से आकर कोई खून कर देगा बहुत उपयुक्त नहीं था, अपने आस पास सतर्क लोगों का कड़ा पहरा रख किसी अनजाने पुरुष को

निकट न आने देना ही काफी था। और इस प्रकार की व्यवस्था उदयभानु ने की भी जरूर। कमलकुमारी के ऊपर भी उसने सख्त पहरा रखवाया। साथ ही वह गुप्त रूप से इस बात पर भी नजर रखता कि सिपाहियों को फुसला कर कोई उसके पास जाने न पाए। परन्तु इस भय से कि कोई देख न ले उसका स्वयं कमलकुमारी की तरफ आँख उठा कर देखने तक का साहस न होता था। उदयभानु इस आशा पर बार बार तसल्ली कर लेता था कि महीना पन्द्रह रोज बीतने के बाद, औरंगजेब की बताई हुई मुद्दत खत्म होने के बाद, मैं जो चाहूँ सो करने के लिए स्वाधीन हो जाऊँगा।

एक दो बार उसे ऐसा भी संदेह हुआ कि कोई छावनी में छिपा छिपा उसकी हत्या की ताक में रहता है। पर खोज करने पर किसी बात का पता न लगा और न कोई ऐसा व्यक्ति ही दिखाई दिया जिस पर पूरा संदेह किया जा सके।

कमलकुमारी के विषय में वह बड़ा सख्त था। परन्तु तमाशे की बात यह थी कि अब वह उसके प्रति जरा जरा मृदु होने लगा था। एक समय नर्मदा के किनारे उसका डेरा लगा हुआ था। चाँदनी रात थी। उदयभानु के मन में आया कि इस समय कमलकुमारी को बुलवा कर उससे कुछ अनुनय विनय करे। परन्तु फिर उसके मन में आया कि उसके डेरे में जाकर ही उसको समझाना अच्छा होगा। उदयभानु ऐसा अविचारशील पुरुष था कि जिस समय जो उसके मन में आता वही कर डालता। तुरन्त वह कमलकुमारी के डेरे में पहुँचा। सिपाही को गड़बड़ न करने की आज्ञा दे वह एकदम कमलकुमारी के अन्तःपुर के पर्दे के पास जा खड़ा हुआ। वह पर्दे को हटाकर भीतर जाना ही चाहता था कि सहसा कमलकुमारी के जैसे रोने-सिसकने और देवलदेवी के

उसको समझाने की आवाज़ उसे सुनाई दी। देवलदेवी कह रही थी —

"प्यारी कमल। निराश क्यों होती हो ? जिन भगवान् एक लिंगजी ने औरंगजेब जैसे दुष्ट बादशाह के मनमे, तुम्हें दु:ख न हो इसलिए, तीन महीने की अवधि देने का प्रेरणा की वह भविष्य में तुम्हारी सहायता नहीं करेंगे, यह कैसे कह सकती हो ? तुम मन में किसी तरह का खेद न करो। मेरा अन्त:करण मुझसे कहता है कि तुम्हारी यहाँ से मुक्ति जरूर होगी। और मुझे ऐसा निश्चय क्यों होता है, यह भी मुझे विदित हो गया है। इसका क्या कारण है ? यही कि तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय देख कर भगवान् एकलिंग जी उदयभानु के मन में जरूर सद्बुद्धि उत्पन्न करेंगे। पर इस कष्टमय प्रसंग को तो किसी तरह पार करना ही होगा। कमल ! मुझे तुमसे कुछ गुप्त बात कहनी है, किन्तु भय है कि कोई सुन न ले। योग्य अवसर देख कर मैं तुमसे कहूँगा। पर क्या तू यह उपवासादि व्रत न छोड़ेगी। ऐसे उपवास करके हत्या कर लेगी तो उपवास का पुण्य-वुण्य तो दूर रहा, उलटा आत्म-हत्या का पाप सिर चढ़ेगा। इस पर ज़रा विचार करो। अगर नहीं विचार कर सकती तो जैसे मैं कहूँ वैसे करो। जब तक मेरे शरीर में प्राण है तबतक तेरे बाल तक को बाँका न होने दूँगा। अगर कोई छल करके यहाँ आना चाहेगा तो पहले मेरी लाश गिर पड़ेगी, तब वह तेरे पास आने पायेगा। यह अच्छी तरह समझ रख।"

कमलकुमारी ने इसका कोई जवाब न दिया। वह रोरही थी। उदयभानु का हृदय यद्यपि पाषाण का बना हुआ था तथापि कमलकुमारी का फूट फूट कर रोना और उसके ऊपर देवलदेवी का असीम भक्ति देख उसने लौट जाना ही उचित समझा। फिर

कभी यहाँ आने का अवसर मिलेगा—यह विचार कर वह चल दिया।

परन्तु देवलदेवी की एक बात उसके दिल में खटक गई थी। कमलकुमारी से वह कौन सी गुप्त बात कहने वाली थी? क्या अपनी हत्या करने के विषय में तो कोई बात नहीं थी? या, इसी छावनी में किसी को अपनी तरफ मिला कर कोई षड्यन्त्र रचने की तो योजना नहीं थी? अथवा, खुद मुझ ही को मरवा डालने की तो यह कोई तैयारी नहीं है? इस प्रकार के तरह तरह के विचार उसके मन में आने लगे। उसने इरादा किया कि कमल-कुमारी के डेरे पर पहरा देने वाले दोनों आदमी हररोज़ बदले जाएँ जिससे कोई पहरेदार लगातार दो रोज़ तक पहरे पर न रहने पाए। यह विचार मनमें आते ही उसने फौरन इसकी पूर्ति के लिए हुक्म भी दे दिया और यह भी आज्ञा दी कि हर एक पहरेदार पहरे के बाद हाज़िरी दिया करे। परन्तु इतना करने पर भी उसे तसल्ली न हुई। देवलदेवी की गुप्त बात जानने की उसकी उत्कट इच्छा जैसी की तैसी ही बनी रही। इच्छा पूर्ति के लिए उसे कोई मार्ग भी दिखाई न दिया।

अन्त में, उसने देवलदेवी से ही किसी प्रकार जोड़-तोड़ लगा कर उस बात का पता लगाने का विचार किया। इस इरादे से उसने दो बार देवलदेवी को यह कहलाकर बुलवा भेजा कि 'मेरी तुमसे मिलने की इच्छा है।' परन्तु देवलदेवी ने इस पर कोई ध्यान न दिया। तब उसने स्पष्ट रूप से उसे अपने पास आने की आज्ञा दी। इस पर देवलदेवी ने कहला भेजा "तुम्हारे अधि-कार में हम लोग पड़े हैं; हमें लाचारी से जिधर तुम्हारी इच्छा हो उधर जाना पड़ेगा। परन्तु कमलकुमारी को अकेली छोड़ मैं, क्षण भर के लिये भी क्यों न हो, कभी नहीं आऊँगी। अगर मुझे

कोई जबरदस्ती पकड़ कर खींच ले जाए तब अगर मेरा बस नहीं चलेगा। जो तुम्हें मुझसे कुछ कहना है तो तुम ही यहाँ आकर जो कुछ कहना हो कह जाओ।"

देवलदेवी का यह सूखा उत्तर पाकर उदयभानु बड़ा सतप्त हुआ। परन्तु उस समय वह कर ही क्या सकता था। एकदम उसे हटाकर कमलाकुमारी से अलग रखने का भी उसे सहसा साहस न हुआ। हारकर, उसने उन्हीं के पास एक बार जा कर मीठी बातों से कुछ बात निकालने का इरादा किया, और इस विचार से एक रोज़ इनके निवास पर जा पहुँचा। उसे देखते ही भय के कारण उन दोनों के होश उड़ गए।

इधर, कमलकुमारी को देख कर उदयभानु का पाषाणहृदय भी पिघल गया। क्या मेरे ही भय से इसकी यह दुर्गति हुई है—यह सोच कर वह चुपचाप खड़ा रहा। कमलकुमारी की अवस्था बहुत ही बुरी थी। वह केवल अस्थि-पञ्जर हो रह गई थी। शरीर की कांति इतनी निस्तेज हो गई थी कि उसके समान निस्तेज वस्तु दुनिया भर में ढूँढ़े न मिलती। अतएव आश्चर्य नहीं कि उसको ऐसी हालत में देखकर उदयभानु के कठोर विचार उसके मन ही में रह गए। अगर इसे अब किसी प्रकार न छेड़ा जाए तो शायद यह बच जाए, नहीं तो जल्द यह रास्ते ही में मृत्यु के आधीन हो जाएगी। यह विचार कर उसने देवलदेवी से साफ़ कह दिया, "आज से मैं तुम लोगों से कुछ न कहा करूँगा। इतना ही नहीं—माघ वदि ५ के रोज़ भी मैं कमलाकुमारी से सिर्फ़ इतना ही पूछ लूँगा कि तुम मुझसे शादी करने को तैयार हो या नहीं। अगर वह 'नहीं' कहेगी तो मैं उससे कोई सवाल भी न पूछूँगा और उसे राजपूताने वापिस लौटा दूँगा। पर, इसका तुम ध्यान रखना। ऐसा न हो कि वह मुझसे चली जाए। मैं इस

देख तक नहीं सकता। मैं अब भी उसे छोड़ सकता हूँ किन्तु इतनी ही बात है कि आशा बड़ी बुरी चीज़ है।"

इतना कह कर वह वहाँ से लौट आया।

इस प्रकार देवलदेवी को आशा की झलक दिखाने में उसको सद्‌बुद्धि की प्रेरणा हुई थी या दुर्बुद्धि की, यह कहना कठिन है। कभी कभी ऐसे भी प्रसंग होते हैं कि दुष्ट-बुद्धि मनुष्य के मन में सद्‌बुद्धि जागृत हो जाती है और उसे दुष्कर्म से परावृत्त करती है। उसको, चाहे थोड़ी ही देर के लिए क्यों न हो, सच्चा अनुताप होता है और कम से कम उस समय, वह निश्चय करता है कि पुनः इस कर्म में कभी प्रवृत्त न होंगे; शायद उदयभानु के सम्बन्ध में भी ऐसी कोई बात हुई हो। संभव है, उसका अनुताप सच्चा ही हो। कमलकुमारी की अवस्था ही ऐसी थी कि किसी भी कठोर-हृदयी को उस पर दया आजाती इतनेपर भी, अपनी ही प्रेरणा से इसकी यह हालत हुई है, यह सोच कर प्रत्यक्ष काल को भी अनुताप होता। अतः उदयभानु की मानसिक अवस्था यदि इस प्रकार की हुई हो तो इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। देखना केवल इतना ही है कि यह अनुताप कितने समय तक रहता है। अथवा उसके मन में यह भी विचार आया हो कि इस समय उसकी अवस्था सुधर जाने पर, फिर उसके ऊपर मन-चाहा अत्याचार किया जा सकता है। अतएव, किस प्रेरणा से उसने इस समय ऐसा व्यवहार किया, यह समझना कठिन है। हाँ, उपर्युक्त रीति से उसने कमलकुमारी के डेरे में आकर इतनी बात कही—इसमें लेशमात्र भी सदेह नहीं।

कमलकुमारी के विषय में हम ऊपर कह चुके हैं। उसकी दिन-चर्या ही ऐसी थी कि यह देख कर आश्चर्य होता था कि

वह इतने दिन कैसे जीती रह सकी। वह सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक सदा रुदन करती रहती थी। अपने पति की पादुका हृदय से लगा कर निरंतर उसी की ओर देखती, पति का ध्यान करती और उनकी पूजा करती। भोजन की थाली का स्पर्श तक न करती। देवल-देवी उससे बहुत कुछ आग्रह करती और केवल उसी की खातिर से कमलकुमारी थोड़ा बहुत दूध पी लेती या कुछ खा लेती। परन्तु खाते खाते वह प्राय वमन कर देती और खाया पिया सब निकल जाता। दवा आदि बिलकुल न लेती। देवलदेवी ने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि वह इस प्रकार रह कर आत्महत्या न करे, परन्तु सब व्यर्थ था। कमलकुमारी उसकी कुछ भी न सुनती और हर बार 'मेरे जीने म क्या लाभ है', यही उत्तर देती। इसी प्रकार वह अपने दिन काटती थी कि एक रोज एक विचित्र घटना होगई।

देवलदेवी कुछ काम के लिए अपने डेरे के द्वार पर खड़ी हो बाहर कुछ देख रही थी कि इतने में उसकी दृष्टि पहरा देने वाले एक आदमी के ऊपर जा पड़ी और एक क्षण तक वह वहीं रुकी रही। परन्तु दृष्टि के इस रुके रहने म केवल आश्चर्य ही न था बल्कि आनंद का भी एक बड़ा अंश मिला हुआ था जो उसके मुख पर झलकता था। उसके नेत्रों म, उसके कपोलों पर, कोई विलक्षण तेज चमक रहा था। वह उस व्यक्ति की ओर कितनी ही देर तक देखती रही और बहुत देर तक सोचती रही कि इस मनुष्य से बातें करनी चाहिएँ या नहीं। अन्त में, यह सोच कर कि आज तक कभी ऐसा साहस नहीं किया, अब करने म कोई उलटा परिणाम न हो, वह लौटने लगी। इतने में वही पहरेवाला मनुष्य डेरे के निकट आया और जिस प्रकार पहरेदार दरवाजे के पास खड़े होते हैं उसी तरह आकर खड़ा होगया।

वलदेवी मन में सोचने लगी कि कहीं मुझे यहाँ खड़ी देख कर ो तो यह मनुष्य यहाँ नहीं आया है। अनंतर, पहरेदार और भी रवाजे के निकट आया और दरवाजे से भिड़ गया। तदनंतर तूता ठीक करने के बहाने उसने नीचे झुक कर एक पैर निकाला और एक छोटी सी चिट्ठी डेरे के दरवाजे के नीचे से भीतर को ढकेल दी। इसके बाद, एक ही जगह खड़ा रहना मानों बेकार समझ वह इधर-उधर घूमने लगा।

देवलदेवी यह सब बातें देख रही थी। उसने तुरन्त चिट्ठी को उठाया और उसे पढ़ा। पढ़ते ही उसका मुखमण्डल खिल उठा। मालूम होता था कोई बड़े ही आनन्द की बात उसने पढ़ी है। उसी आनन्द के जोश में वह कमलकुमारी के पास गई और बोली, "सखी कमल! अपना छुटकारा जरूर होगा, अब चिन्ता न करो। तुम तो स्वयं बुद्धिमती हो—मैं जो कहूँ उसे सुनो। मैंने आजतक तुमसे कुछ नहीं कहा परन्तु आज कहने में कोई हर्ज नहीं है। मैं अभी तक इसी भय से नहीं कहती थी कि कोई छिप कर सुन न ले और जाकर उदयभानु से न कहदे। इसी भय से आज तक नहीं बोली। लेकिन इस समय मैं तुमसे कहूँगी लेकिन इस शर्त पर कि तुम अपना हठ छोड़ दो। नहीं तो, तुम इतनी दुर्बल हो कि छुटकारे के समय तुमसे चला तक नहीं जावेगा और फिर अपना किया-कराया सब बिगड़ जाएगा। मेरे मुँह से जब सब सुनोगी, असल बात जान लोगी, तो अपने आप ही तन्दुरुस्त होने की इच्छा करोगी। सुनो अब, मैं तमाम बात तुमसे कहती हूँ।"

फिर उसने बड़ी सावधानता से कमलकुमारी के कान में कुछ कहा। जैसे जैसे कमलकुमारी सुनने लगी और देवलदेवी की बातें उसके हृदय में उतरने लगीं वैसे वैसे उसके चेहरे पर नाना

प्रकार के विकारों की छाया दृष्टिगोचर होने लगी। पहल पहल संशय उत्पन्न हुआ, फिर उसके स्थान में आनंद दिखाई दिया। और फिर इस आनन्द का पर्यवसान हर्षातिरेक में होता हुआ मालूम पड़ा। इसके बाद जब देवलदेवी ने उसे दो चिट्ठियाँ दीं और उसने उन्हें पढ़ा तब तो वह हर्ष से उछल कर बोल उठी, "देवल! यदि यह सच हो और ऐसा ही जाए और मैं अपने पिताजी को देख सकूँ, तो तुझे और तेरे "

परन्तु देवलदेवी ने झट उसका मुँह बन्द करके कहा, "कमल! कमल! कितनी ज़ोर से बोल रही हो! वाह! इसी लिए मैंने आज तक तुमसे नहीं कहा था। अभी तो मैंने तुमसे सब बातें कही भी नहीं थीं कि पहले ही से तुम इस तरह करने लगीं कि तमाम बना बनाया खेल बिगड़ जाए। मगर खैर, अब ऐसा न करना। अब अच्छी तरह खाओ, अच्छी तरह पिओ और अपने शरीर को पुष्ट करो, जिससे अगर चार कोस चलने का भी मौक़ा आजाए तो कोई दिक्क़त न मालूम हो। नहीं तो, कहीं तुम्हारी दुर्बलता के कारण सब मामला ठंढा न होजाए।"

कमलकुमारी की उस समय ऐसी ही अवस्था थी कि देवलदेवी उससे कहती और वह मान लेती। अतएव उसने उत्तर दिया, "यदि तू और वे मेरे लिए इतने कष्ट उठाते हों तो मेरे लिए भी उचित नहीं है कि तुम्हें दुःख दूँ। मैं अब तुम जैसे कहोगी वैसे ही करूँगी।"

उसी दिन से कमलकुमारी ने अपने जीवन-क्रम में परिवर्तन कर दिया।

यह उदयभानु के दक्षिण में पहुँचने का वृत्तान्त है। वहाँ पहुँच कर उसने साथ लाई हुई बादशाह की चिट्ठी जसवंतसिंह

और शाहज़ादा मुअज्ज़म के पास भेज दी तथा स्वयं कोंडाणे के किले पर जाकर रहने लगा। यहाँ उसने जासूस आदि नियुक्त कर शिवाजी और जसवंतसिंह के परस्पर संबंध जानने का प्रयत्न आरंभ किया। इस उपक्रम में फलनिष्पत्ति की ओर उसका ध्यान नहीं था। जो कुछ बादशाह को लिखना चाहिए था सो उसने पहले ही अपने मन में निश्चित कर लिया था और उसके अनुसार उसने आठ दिन के भीतर ही लिख भेजा कि, 'जसवंतसिंह और शाहज़ादा मुअज्जम गुप्त रूप से शिवाजी को सहायता देते हैं। शाहज़ादा दूसरा उपाय न देख कर शायद जसवंतसिंह से सहमत हुए होंगे। जसवंतसिंह तो पूरा राजद्रोही बनकर शिवाजी से मिला हुआ है। आपकी दी हुई चिट्ठी भी उसने शिवाजी को ज़रूर दिखाई होगी—यह मेरा संदेह है। बीजापूर तथा गोलकुंडा के राज काबिज़ करना और शिवाजी पर नज़र रखना तो केवल उसका एक बहाना है। उसका इरादा यही है कि बादशाही सेना के द्वारा इन दोनों राज्यों को लेकर शिवाजी को सौंप दे। मैं जो अर्ज़ कर रहा हूँ इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है। शिवाजी के हाथ में दक्षिण का सब सूबा चला जाएगा और साथ ही और दूसरे राज भी उसके हाथ में आ जाएँगे। इस प्रकार जब उसका बल बढ़ जाएगा तो आपकी तमाम सेना भी उसके विरुद्ध आकर सफल हो सकेगी या नहीं—इसमें मुझे संदेह है। जसवंतसिंह के फरेब से शिवाजी की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। उसकी प्रतिष्ठा की बढ़ोत्तरी कम करने का एक ही उपाय है—और वह यह कि जसवंतसिंह को यहाँ से दूर हटा दिया जाए। जब तक दक्षिण में जसवंतसिंह मौजूद है तब तक शिवाजी को गिरफ्तार करना या उसके उपद्रव बंद करना असंभव है—कारण, जसवंतसिंह उसके दबाव में आकर उसे स्वेच्छानुसार कर उगाहने

मे नहा रोकते। और इसका फल यह हुआ है कि वादशाह के वडे वडे सरदार जो कि नमकहलाल रहे जाते थे अब, सब, शिवाजी से मिल गए हैं। इसलिए इन सब बातों को देखते हुए यहाँ का बदोवस्त नए सिरे से करना होगा। जसवतसिह को अगर यहीं ठहरने दिया जाएगा तो वह किसी दूसरे को अपने काम में हाथ भी न डालने देगा—उलटे और कोई बाधा ही उत्पन्न करेगा। इसलिए सब से पहले उसकी यहाँ से रवानगी करा देनी ही उचित है।

"सब तमाम हकीकत निवेदन कर दी है। उसे ध्यान मे रख कर हुक्म फरमाइएगा। मै आप की आज्ञानुसार कोंडाणे पर रह रहा हूँ। इस किले को आप कोई चिन्ता न करें। मैं जब से किले पर आया हूँ सब लोगों पर दबदबा जमाए हुए हूँ। सब बदोवस्त ठीक है। मगर इस एकही किले का बँदोबस्त ठीक रखने से काम नहीं चलेगा। आखिर, दक्षिण में तो यह लुटेरा शिवाजी चाहे जो कर ही रहा है और जसवतसिह उससे सहमत है ही। ऐसी अवस्था मे एक ही गढ अपने कब्जे मे रखने से कोई विशेष लाभ नहीं। अगर शाहशाह को इजाजत हो जाए तो यह गुलाम एक डेढ महीने में ही इस हिकमती शिवाजी की हिक्मत को हवा में उडा उस कैद कर बादशाह के कदमो में लाने को तैयार है। यहाँ का हाल-हवाल देखते हुए यह बात नामुमकिन नहीं है। केवल जसवतसिह को यहाँ से उत्तर की ओर हटा लेना जरूरी है। फिर शाहजादा मेरे ही साथ रहेंगे और मैं उनका मन आपकी ओर से साफ करा कर ऐसी कोशिश करूँगा कि उनका आपके प्रति प्रेम भाव उत्पन्न हो जाए। मराठों से सुलह रखने में अपने ही खिलाफ चलते हुए भी उन्हे इसकी कुछ खबर नहीं होती, —इसका कारण जसवतसिह ही है।

"मैं जहाँपनाह के हुक्म की राह देख रहा हूँ—हुक्म का तावेदार हूँ। इस समय कोंडाणे गढ़ की रक्षा कर रहा हूँ। यह थैली इसीलिए साँडनी-सवार के हाथ भिजवा रहा हूँ।"

इस प्रकार चिट्ठी को रवाना कर, भविष्य की घटनाओं पर विचार करता हुआ और माघ वदि नवमी के कितने दिन हैं, इस इंतजार में उदयभानु कोंडाणे किले पर रहने लगा।

छठा परिच्छेद

महाराज की चिंता

तानाजी, शेलारमामा आदि लोगों का खान-पान हो चुका। किन्तु महाराज अपने महल से न आए। सब लोग आश्चर्य करने लगे। महाराज में एक अच्छा गुण यह था कि वे अपने लोगों के भोजन आदि के विषय में भी ध्यान रखते थे। लड़ाई के मौक़ा पर भी जब कभी कहीं मुकाम होता तो पहले तमाम छावनी में घूम कर महाराज देखते कि प्रत्येक शिलेदार, बारगीर, नौकर इत्यादि लोगों के खाने पीने का इतजाम हो गया है या नहीं। उसके बाद वे अपने खाने की चिन्ता करते। इस सूक्ष्म दृष्टि के कारण हर कोई महाराज के ऊपर अत्यन्त भक्ति-भाव रखता था। हरएक की यह धारणा थी कि हम पर महाराज का प्रेम है और इसी धारणा के वश वे उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे। प्रत्येक अपने प्राणों को महाराज के चरणों में मन वचन-काय से अर्पण कर चुका था। जिस समय महाराज किसी से कोई काम करने को कहते थे तो वह समझता था मानो उसे उसी क्षण स्वर्ग मिल गया हो।

महाराज की स्मरणशक्ति भी विलक्षण थी। जब वह एक बार किसी को देख लेते और उसका नाम आदि सुन लेते तो उसे कभी न भूलते। जब कभी एक बार देखा हुआ मनुष्य उन्हें

दुबारा कहीं मिलता तो वह उसे अपने पास बुलाते और उसकी कुशलक्षेम पूछते। यह देख कर कि महाराज को हमारा नाम तक याद है लोग अपने ऊपर उनकी विशेष कृपा समझते और आनंद से फूले न समाते।

हर कोई यही सोच रहा था कि इतनी सूक्ष्म दृष्टि रहने पर भी आज तानाजी, शेलारमामा आदि के विषय में, जो कि विवाह का निमंत्रण देने आए थे, महाराज ने भोजन-संबंधी पूछताछ क्यों नहीं की। जीजाबाई भी आश्चर्य करने लगीं और, महाराज क्या कर रहे हैं, यह देखने के लिए उन्होंने एक चोबदार को भी भेजा। परन्तु महाराज अपने महल में ही बैठे थे। पत्र वाला जासूस भी अभी बाहर नहीं निकला था। यह देख सब का अनुमान हुआ कि किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में महाराज इस समय व्यस्त हैं।

परन्तु जीजाबाई खुद मेहमानों की देखभाल कर रही थीं। महाराज के न आने से किसी तरह की कमी रही हो सो बात नहीं थी। इस विषय में जीजाबाई महाराज से भी दसगुना अधिक चतुर थीं। परन्तु महाराज को इस अवस्था में देख तानाजी ने विचार किया कि कोई न कोई चिन्ता की बात जरूर पैदा हो गई है। वह इस सोच में थे कि किस प्रकार वह बात मालूम की जाए और किस प्रकार महाराज को उसकी चिन्ता से बचाया जाए। तानाजी ने भोजन किया तो, परन्तु क्या खाया, क्या न खाया, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं था। बूढ़े शेलारमामा के साथ जीजाबाई बातें कर रही थीं, छोटे रायबा के साथ दिल्लगी भी करती जाती थीं। वह उसके जवाबों पर हँसती जाती थीं तथा बीच-बीच में तानाजी से भी प्रश्न करती जाती थीं। तानाजी ने जवाब तो दिए किन्तु भोजन की ओर या भाषण की ओर उनका

तनिक भी ध्यान न था। उनका मन किसी चिन्ता में फँसा हुआ था—यह बात जीजाबाई भी जान गई। जीजाबाई ने जान लिया कि महाराज को अभी तक अपने खास महल में ही बैठ देख और यह सोच कर कि उनपर कोई चिन्ता आ पड़ी है तानाजी शून्यहृदय हो गए हैं। अपने पुत्र के ऊपर तानाजी जैसे वीर पुरुष की असीम भक्ति देख उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। परन्तु उनके स्नेह और भक्ति का माता को केवल आज ही परिचय नहीं मिला था। फिर भी, इस भक्ति का महत्त्व ही ऐसा है कि जब भी उसकी झलक दिखाई देती है तभी एक प्रकार का कौतुक सा होने लगता है।

परन्तु तानाजी के साथ विनोद करने के उद्देश्य से जीजाबाई बोलीं, "तानाजी! मैं कब से तुमसे बातचीत कर रही हूँ, पर मालूम होता है कि तुम्हारा खयाल किसी दूसरी ही ओर लगा हुआ है। क्या महाराज की अनुपस्थिति में हमसे बातचीत भी नहीं करोगे। शायद तुम इसलिए संकोच कर रहे हो कि वे अभी यहाँ तुमसे आग्रह करने के लिए मौजूद नहीं हैं। क्या हमारे आग्रह का कोई भी मूल्य नहीं है? हम और वह दोनों बूढ़े हैं। वह तो हमारे आग्रह में ही संतुष्ट होंगे।"

तानाजी ने मानो एकदम होश में आकर उत्तर दिया, "छि छि, माताजी! ऐसी बात मन में न लाइए। यह क्या बात आज आप के मन में समाई है। आप से महाराज क्या ज्यादा कर सकते हैं। पर महाराज को अबतक आते न देख कर यह खयाल होता था कि कोई न कोई चिन्ता का कारण जरूर उपस्थित हो गया होगा।"

इसके बाद तानाजी ने फिर कहा, "और तो कोई बात नहीं है माताजी! आप जैसी प्रत्यक्ष अन्नपूर्णा माता के सामने होते

हुए और अधिक चाहिए ही क्या। पर, माताजी ! इस तानाजी की यही हार्दिक इच्छा है कि कुछ न कुछ महाराज की सेवा सदैव ही करता रहे—उनकी चिन्ता का कारण एक न होने दे। माताजी ! यदि इस भावना से उनकी सेवा में तत्पर न रहेंगे तो उनके सेवक ही कैसे होंगे ?"

तानाजी की बात पूरी तौर से समाप्त भी नहीं हुई थी कि यह ख़बर मिली कि महाराज अपने खास महल से निकले हैं। महाराज ने आते ही देखा कि तानाजी तथा शेलारमामा का भोजन हो चुका है। यह देखते ही महाराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा, "वाह ! हमें आने में जरा सी देर होगई, इसलिए आपने ठीक ठीक भोजन भी नहीं किया। मगर हाँ, भूल तो हमारी ही है। पर, शेलारमामा साहब ! हम तो आपके बच्चे हैं। अगर हमें आने में जरा सी देर हो गई तो क्या इस पर नाराज होकर भोजन न करना आपके लिए उचित है। घर तो आपही का है—किसी दूसरे का तो नहीं। अपने घर में अपनी देखभाल अपने आप ही करनी चाहिए। और, फिर माताजी तो यहाँ मौजूद थी हीं। तिसपर भी, तानाजी तो हमारे ही हैं, इन्हे तो अपनी फ़िक्र खुद ही करनी चाहिए थी। माताजी ! बताइए, इन्होंने ठीक ठीक भोजन किया है या नहीं ? और हाँ जी, छोटे सूबेदार ! आपका कैसा मिज़ाज है ? हमारे साथ लड़ाई पर चलोगे न ? पहले यह बताओ कि शादी करोगे या हमारे साथ लड़ने चलोगे ?"

"महाराज ! अगर लड़ने के लिए साथ ले चलते हैं तो पहले वहीं चलूँगा" रायबा ने बड़ी उत्सुकता के साथ कहा और अपनी तलवार को हाथ लगा कर बोला, "महाराज इस छोटी सी तलवार से मुग़लों का कैसे सामना कर सकूँगा ? पर हाँ, मैं तो

मुगलों के लड़कों से ही लड़ूँगा—उनसे लड़ने के लिए यह काफी है। मैं पिता जी से बार बार विनय करता हूँ कि मुझे एक तलवार दिला दें पर वह सुनते ही नहीं।"

"पिता नहीं देते तो न सही, हम ही दे देंगे। फिर तो ठीक रहेगा।"

"बस, बस, फिर क्या है! पर पिता जी को भी तलवार क्या आपने ही दी थी?" रायबा ने पूछा। इतने में शेलारमामा बीच में बोल उठे, "महाराज! इसकी बकवाद तो बनी ही रहेगी। आप जो कुछ कहेंगे उस पर कुछ न कुछ यह जवाब देता ही रहेगा। पर, महाराज! क्या आप हमारे गाँव को अपनी चरण धूलि से पवित्र न करेंगे। हमारे ग्रामनिवासी आपके दर्शनों के लिए बड़े व्याकुल हो रहे हैं।"

"जरूर जरूर आऊँगा। मामा साहब! आप हमें क्या लगाते हैं। क्या आपका निमन्त्रण स्वीकार न करना हमारे लिए उचित है? पर आप जानते ही हैं कि आजकल के दिन बड़े कठिन हैं। किस समय क्या बात उपस्थित हो जाए यह नहीं कहा जा सकता। औरंगज़ेब का एक क्षण भी विश्वास नहीं कर सकते। इस क्षण जो कुछ वह करेगा बिलकुल उसका उलटा दूसरे क्षण में कर दिखाएगा। उसका वह धोखा और छलबल मिर्जा राजा साहब तो बहुत सिधाई हैं, परन्तु उनका भरोसा ही क्या है। शायद वही आकर हमारे किलों के लिए धावा न कर दें हमला किया हो। वह दुष्ट किस समय किस तरह की चालबाजी करे इसका ठिकाना नहीं। मामा जी! आप जानते हैं कि साँप का विश्वास एक बार किया जा सकता है, पर दुष्ट का नहीं। आप थके हुए हैं जरा आराम कर लीजिए, फिर

इस विषय में बातचीत करेंगे। ताना जी! अगर जरूरत समझो तो तुम भी आराम करो।"

तानाजी महाराज की बातें बड़ी शान्ति से सुन रहे थे। उनके कान महाराज के मुख से निकले हुए प्रत्येक शब्द को अच्छी तरह ग्रहण करते जाते थे और उनके नेत्र उनके चेहरे पर जमे हुए थे। तानाजी को मालूम हुआ कि महाराज अपनी बातों में कुछ न कुछ छिपा जरूर रहे हैं। आखिर में जब उन्होंने सुना कि 'अगर जरूरत समझो तो आराम करो' तो वह हाथ जोड़ कर बोले, "महाराज! बोलने के लिए क्षमा कीजिए; किन्तु एक जासूस अभी आया था। संदेह होता है कि वह कोई चिन्ताजनक खबर लाया होगा। जब कि महाराज इस तरह चिन्ता में ग्रस्त हैं तो तानाजी के लिए असंभव है कि वह शान्ति से आराम करे।"

ताना जी के ये शब्द सुन महाराज मुस्कराए और बोले, "तानाजी! तुमसे मैं कहने वाला नहीं था। और, जब तक कि तुम लोग यहाँ मौजूद रहते मैं किसी से कहता भी नहीं। किन्तु तुमने चेहरे से ताड़ लिया है। इस लिए, अब मुझे कहना ही पड़ेगा। माता जी और तुम जब उधर मेरे कमरे में चलोगे तो कहूँगा। मामा साहब! आप भी चलिए। फिर आप समझ जाएँगे कि मैं अभी क्या कह रहा था।"

इतना कह कर महाराज चले। उनके पीछे पीछे तानाजी और शेलारमामा भी चले। सब के पीछे जीजाबाई चलीं। खास महल पर आते ही चोबदार को आज्ञा दी कि, कोई भी आवे, थोड़ी देर के लिए खबर तक न दे। बालाजी आवजी को भी बुलाया गया। उनके आने पर पाँचों व्यक्ति बैठे और महाराज ने दिल्ली से आया हुआ एक पत्र पढ़ने के लिए चिट्नीस को दिया।

परन्तु इस पत्र में क्या लिखा था—यह बताने से पहले यह कह देना आवश्यक है कि यह पत्र कहाँ से आया था और किसने उसे भेजा था। जयसिंह के आग्रह से और बादशाह के दिखावटी दिलखुश पत्र से शिवाजी महाराज दिल्ली गए थे और वहाँ बादशाह ने उनका अपमान कर उन्हें कैद कर लिया था। इसके बाद जब वह कैद में रह रहे थे तो उनके अच्छे स्वभाव के कारण तथा औरंगजेब की दगाबाजियों से घृणा करके दरबार के बहुतेरे राजपूतों का तथा एक दो मुसलमान सरदारों का भी मन शिवाजी की ओर आकर्षित होगया था। उनमें से एक दो उनके अच्छे स्नेही भी बन गए थे। इन स्नेहियों में से एक राजपूत हर रोज बादशाह की खबरें उनके पास पहुँचाया करता था। बाद में जब महाराज दिल्ली से निकल आए तो वही राजपूत विशेष महत्व की खबर पहुँचाने के लिए उनके पास एक जासूस भेजा करता था उसी राजपूत सरदार की तरफ से यह जासूस इस समय पत्र लेकर आया था।

इस पत्र में, औरंगजेब ने जिस हेतु से उदयभानु को दक्षिण में भेजा था, सो सब लिखा था। वास्तव में, जिस समय उदयभानु कोंडाणे किले पर पहुँचा उसी समय यह जासूस भी आ पहुँचता परन्तु रास्ते में बीमार हो जाने के कारण किसी गाँव में उसे ठहर जाना पड़ा। उदयभानु नाम का कोई हिन्दू-मुसलमान सरदार, दस पाँच हजार सेना लाकर एकाएक कोंडाणे के गढ़ पर आकर रहने लगा है और उसने कुछ सेना जसवंतसिंह के पास भी भेजी है—यह खबर महाराज को पहले ही मालूम हो गई थी और इसका कारण जानने के लिए महाराज ने जासूस भी रवाना किए थे। आज के पत्र ने उनकी हरेक शंका दूर कर दी। ताजाजी आवजी ने पत्र समाप्त किया। सब लोग चुपचाप

बैठे थे। तब जीजाबाई बोलीं, "हाँ! मेरे मन में बहुत दिनों से विचार उठ रहा था कि कोंडाणे का किला लेना ही चाहिए। बादशाह बड़ा ही कपटी है। इसीलिए उसने उसे अपने ही कब्जे में रक्खा जिससे कि जब चाहे तब शत्रुओं के ऊपर खूब दूर तक अपना दाँव चला सके। परसों मैं खड़ी थी कि कोंडाणे गढ़ पर नजर गई। उसी समय विचार हुआ कि कहूँ कि इस गढ़ को लेकर उसके ऊपर सब सेना रख दो। इसके बिना ठीक बंदोबस्त नहीं रह सकता।"

शिवाजी बोले, "माता जी! आपका कहना अवश्य सच है। परन्तु सुलह के विरुद्ध चलने का उस समय कोई सबब नहीं था। अब तो चाहे जो कर सकते हैं—कारण कि, उदयभानु को ससैन्य यहाँ भेजने की वजह से हमारे मन में शंका उत्पन्न होने लगी है। इसके अलावा, अपने को एक सुभीता भी है। इस पत्र से यह अच्छी तरह समझ में आसकता है कि बादशाह ने उदयभानु को जसवंतसिंह तथा शाहजादा के ऊपर नजर रखने को भेजा है। वे दोनों जब इस बात को जान लेंगे तो उसे हरगिज सहायता नहीं देंगे। और बादशाह का तुम्हारे ऊपर कितना विश्वास है—यह दिखाने के लिए यह पत्र मैं जानबूझ कर उन दोनों के पास रवाना करने वाला हूँ। बस, थोड़े दिनों के लिए वे चुपचाप बैठे कि अपना कार्य पूरा हुआ। गढ़ कब्जे में आने के बाद फिर वे हमारे विरुद्ध चाहे जितनी ही गड़गड़ मचाएँ; हम उनको एक न चलने देंगे। वे लोग जालसाजी करने वाले तो नहीं मालूम होते बल्कि जान पड़ता है बादशाह के विरुद्ध हमसे ही मिलना चाहते हैं। परन्तु सावधान रहना सब से अच्छा है। इसलिए हमारा पहला काम गढ़ लेना है। उसी की तैयारी में अब लगना चाहिए। उदयभानु नया आदमी है। वह इस

प्रवेश न परिचित हो—इससे पहले ही उसे भगा देना जरूरी है। पूरी व्यवस्था करने के लिए उसे किसी प्रकार की अवधि देना मुनासिब नहीं। गढ़ लिए बिना अब काम नहीं चलेगा।"

महाराज के यह शब्द सुनते ही तानाजी बोल उठे, "सरकार! मैं बहुत दिनों से प्रार्थना करने वाला था कि अब आप किसी भी लड़ाई में मुख्य भाग न लें। हम नौकर किस बात के हैं? लड़ाई में अगर आपका कुछ भी बाल बाँका हो तो कितनी बुराई होगी? पहले की बात दूसरी थी। अब आपके ऊपर तमाम स्वराज्य अवलंबित है। यहाँ रहने के लिए या राजगढ़ में रहने के लिए मुझे हुकम दीजिए।"

"तानाजी! तुम्हारे प्राणों और हमारे प्राणों में अन्तर क्या है?"

"महाराज! मेरे प्राण और आपके प्राणों में अन्तर क्या है—यह आप पूछते हैं? सरकार! अगर आपके प्राणों की यत्किञ्चित् भी क्षति होगी तो स्वराज्य की इस विशाल इमारत का उन्मूलन करने के लिए शत्रु को जरा भी कठिनाई न होगी। वह अपने आप ही गिर जाएगी। आप ही इस इमारत के आधार स्तंभ हैं। अगर मेरे ऊपर कोई आपत्ति आई तो उसका इतना भी दुःख न होगा जितना एक ईंट गिरने का होता है। जब तक आप मौजूद हैं मेरे समान लाखों आदमी आप पा सकते हैं। आप आज्ञा कीजिए—मैं अभी इस गढ़ को कब्जे में लाता हूँ।"

"तानाजी! आपकी हिम्मत और बहादुरी में मुझे संदेह नहीं है। किन्तु आपके पुत्र की अब शादी होने वाला है। जब तक यह नहीं हो चुकती मैं तुम्हें कोई कार्य करने को नहीं दूँगा। गढ़ हस्तगत करना जरूरी है और अभी हो लेना चाहिए, और

विलम्ब से काम न चलेगा यह भी ठीक है। इसीलिए, मैंने खुद ही वहाँ जाने का इरादा किया है।"

"शादी, महाराज! स्वामिकार्य के आगे लड़के की शादी क्या चीज हो सकती है। सरकार! पहले कोंडाणे गढ़ की शादी करूँगा और फिर अपने पुत्र को। मामा जी! आप वापिस जाइए और सूर्याजी से कहिएगा कि सब सेना लेकर तुरन्त यहाँ आएँ। महाराज! कोंडाणे का क़िला सर करने के बाद फिर आपसे बातचीत करूँगा। किन्तु यदि क्षमा करें तो एक प्रार्थना और करूँ।"

"क्या प्रार्थना है?" तानाजी की ओर देखते हुए महाराज ने उत्सुकता से पूछा।

"प्रार्थना केवल इतनी है कि जब तक मैं गढ़ को ले न लूँ, महाराज इस गढ़ से कहीं न हिलें। जो कुछ मैं करूँगा, जिस जिस युक्ति से मैं काम लूँगा सो सब महाराज को विदित करूँगा,—आपकी सलाह लिए बिना कुछ नहीं करूँगा। पर, आपको यहाँ से कहीं जाना न होगा। केवल मुझ पर ही यह काम सौंप दीजिए। मैं सब काम तय करके आऊँगा। यह स्वामिसेवा आपको मुझसे करा लेनी होगी। आपके चरण छूकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से दस दिन के भीतर ही कोंडाणे जीत कर आपके चरणों के पास आ उपस्थित हूँगा। हमारे प्राणों की कीमत ही क्या? जब तक आप सुरक्षित हैं मेरे समान लाखों आदमी आपको मिलेंगे। पर आपके बाल तक को जरा भी क्षति होना तमाम राज्य की क्षति है।"

ताना जी ने यह बात इतने आवेश के साथ कही कि एक क्षण के लिए शिवाजी महाराज भी कुछ न बोल सके। बाद में वे ताना जी से बोले, "तुम तो हमें शादी के लिए निमंत्रण देने

आए हो, अगर मैं तुम्हें शादी को छोड़ कर दूसरे काम पर रवाना करूँगा तो लोग क्या कहेंगे ? औरों की बात रहने दो। पहले इन शेलारमामा से ही पूछो, ये क्या कहेंगे। ने कुछ न "

पर शेलारमामा ने महाराज को रोक कर एकदम कहा, "मुझे पूछते है ? महाराज ! मैं थोडे ही अब लौटने वाला हूँ। तान्हा ! यह कार्य अपने ऊपर लेते हुए तूने अपने कुल की प्रतिष्ठा रक्खी, बेटा ! महाराज ! स्वराज्य का काम पहले या लड़के की शादी पहले ? मैं भी तानाजी के साथ ही गढ लेने के लिए जाऊँगा। सरकार ! गढ अपने हाथ ही में आया समझिए। गढ लेने के बाद क्या शादी नहीं हो सकती ? पहले तो उसी गढ की शादी है। तानाजी ने जो कुछ कहा है सो बिलकुल सच है।"

इसके बाद शेलारमामा ने जरा देर ठहर कर फिर कहना आरंभ किया, "महाराज ! आप चिन्ता न करें। मेरी उम्र तो पचासों वर्ष की है—बल्कि ज्यादा ही, कम नहीं—पर आप देखिएगा कि मैं किस तरह गढ पर अधिकार करता हूँ। पर जैसे यह तानाजी कहता है वैसे ही आपको करना होगा। यहाँ से आप जरा भी न हिलें। गढ काबिज करने के बाद वहाँ होली सी जलाएँगे जिससे समझ लीजिएगा कि गढ सर हो गया। और फिर जो कुछ मुनासिब होगा सो करना आपका अख्त्यार रहा। क्यों तान्हा ! ऐसा ही है न ? महाराज ! इस तानाजी को मैं धन्यवाद देता हूँ कि इसने हमारे कुल की इज्जत रखली। भाई ! अब तो तुम सूर्याजी को समाचार देने के लिए किसी दूसरे को भेज दो। मैं तो तुम्हारे संग ही जाऊँगा। बतलाऊँगा कि बूढे की हड्डियों में कितनी ताकत है। इन मुगलों की मुर्दा ढ्यान के लिए मेरे समान बूढा ही काफी है।"

बूढे की वीरश्री देख कर महाराज विस्मित रह गए। उनको

ख़याल था कि बूढ़ा तानाजी को उस काम से पराङ्मुख ही करेगा—कहेगा कि, ब्याह छोड़ कर इस फंद में क्यों फँसते हो, महाराज अगर किसी दूसरे को भेजते हों तो क्यों नहीं मान जाते। परन्तु बूढ़ा तो सब से ही तेज निकला। इतने में वह तानाजी की ओर मुड़ कर फिर बोला, "अगर अवसर आया तो बंदर की तरह गढ़ के ऊपर चढ़ बैठूँगा।"

इस समय बूढ़े का अभिनय अपूर्व ही था। उसे देख जीजाबाई को हँसी आगई और वह अपने पुत्र से बोली, "बेटा! इन्हीं लोगों के साहस और आशीर्वाद से यह राज्य चलता है। अपने राज्य के ये स्तम्भ कितने ही पुराने हों, परन्तु उनका मूल्य बहुत बड़ा है।"

शेलारमामा इस पर तुरन्त बोले, "मा! यह सब तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है। धन्य है तेरा उदर कि जिसमे ऐसा हीरा पैदा हुआ जिससे हमारा जीवन भी मूल्यवान् है। अब यहाँ से हम रवाना होंगे। रायबा उधर सोता होगा, उसे तुम्हारे ऊपर सौंपा है। गढ़ लेकर लाएँगे तो उसे ले जाएँगे।"

इतने मे तानाजी उठे और उन्होंने महाराज तथा जीजाबाई को शिर से प्रणाम किया तथा आशीर्वाद और महाराज के हाथ का लगाया हुआ पान लेकर वह और मामाजी, दोनों जाने के लिए तैयार होगए।

महाराज ने उन्हे आनन्द से विदा किया।

सातवाँ परिच्छेद



कांडाणे का किला

आगामी बातों का वर्णन करने से पहले पाठकों को इस गढ़ की रचना आदि से विदित कर देना यहाँ उचित होगा जिससे कि वर्णित की जाने वाली घटनाएँ कहाँ हुई, यह अच्छी तरह समझ में आ सके।

यह गढ़ पूना से लगभग सात कोस दक्षिण पश्चिम दिशा में है। जिस पर्वत श्रेणी का नाम सिंहगढ़ या भुलेश्वर है उसी श्रेणी के एक अत्युच्च शिखर पर यह बसा हुआ है। दक्षिण तथा उत्तर की दिशा में यह क़िला मानो एक प्रचंड चट्टान ही है जहाँ से इसके ऊपर तोप दागना या हमला करना बिलकुल असंभव है। यह गढ़ कब और किसने बनवाया था इसका, कुछ पता नहीं है। किन्तु उसके नाम से तथा दंतकथा से यह अनुमान किया जा सकता है कि जिस समय भारतवर्ष में मुसलमानों का किंचित भी प्रवेश नहीं हुआ था तथा जब कि प्रदेश, गढ़, नगर आदि को संस्कृत नाम देने का ही रिवाज था तभी से इस गढ़ का अस्तित्व चला आता होगा।

पहले-पहल इस क़िले का नाम सिंहगढ़ नहीं था। तब इसे 'कांडाणे' कहा करते थे। इसी के एक ओर एक छोटा सा ग्राम

आज भी मौजूद है जिसका नाम कोंडणपुर है। दंतकथा इस प्रकार है कि 'कोंडणपुर' का अर्थ 'कौंडन्यपुर' और 'कोंडाणे' का अर्थ 'कौंडिन्य ऋषि का आश्रमस्थान' है। अब तक इस गढ़ के आस-पास रहने वाले ग्रामीण लोग कहते हैं कि यह गढ़ कौंडिन्य अथवा शृंग ऋषि की तपश्चर्या का स्थान है। 'कोंडणपुर' के अन्तिम शब्द 'पुर' से हम कह सकते हैं कि प्राचीन 'कोंडण' शब्द मुसलमानी नहीं है। 'कोंडणपुर' का पर्याय 'कुंडिनपुर' या 'कौंडिन्यपुर' ही हो सकता है। इसी तरह 'कोंडाणे' का 'कुंडिनगढ़' या 'कौंडिन्यगढ़' हो सकता है। यह गढ़ मुसलमान लोगों ने हरगिज नहीं बनाया है। आरम्भ में इसको यादव अथवा शिलाहार अथवा इनके भी पूर्वीय किसी पराक्रमशाली राजा ने बनाया होगा। इतिहास में इस क़िले का नाम पहले-पहल मुहम्मद तुग़लक़ के कारनामों में सुनाई देता है। इस प्रदेश में कोई धीवर जाति का नागनाइक नाम का राजा राज्य करता था। उसी के अधिकार में यह गढ़ था। जब मुहम्मद तुग़लक ने इस देश पर चढ़ाई की तो उसने इस राजा को खूब सताया। दूसरा उपाय न देख राजा ने अपनी सेना के साथ गढ़ का आश्रय लिया। परन्तु शस्त्रास्त्र की सहायता से गढ़ पर अधिकार करना नितान्त कठिन था और मुहम्मद तुगलक को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। आठ महीने तक उसने उस किले को घेरे रक्खा और अन्त में जब किले में खाने को कोई सामान न बचा तो राजा ने किले को छोड़ दिया।

इतिहास में आगे लिखा है कि अहमदनगर के संस्थापक मलिक अहमद के अधिकार में यह गढ़ था। अहमदनगर की अधीनता में शहाजी राजा के अधिकार में भी यह क़िला रहा। जब कि जीजाबाई क़ैद से मुक्त हुई थीं तो वह इसी कोंडाणे

किले में रहता था। जब बीजापुर के राजा ने हैरान किया था तो शहाजी राजा को एक बार इसी गढ का आश्रय लेना पड़ा था और बाद में जब वह बीजापुर के बादशाह के मातहत हुए तो इस किले के मालिक बीजापुरवाले होगए। यही गढ था कि जो तमाम पूना प्रान्त की रक्षा करने के लिए समर्थ था। इसी लिए इस गढ के ऊपर सब की नजर रहती थी।

शिवाजी महाराज ने स्वराज्य-स्थापन का आरम्भ तोरणागढ से किया। तोरणागढ के बाद, इसका महत्व जान कर उन्होंने कोंडाणागढ भी ले लिया। इस प्रकार स्वराज्य के संस्थापनकार्य का उपक्रम शुरू हुआ। बहुत वर्षों तक यह गढ महाराज के ही कब्जे में रहा। जिस समय शाइस्ता खाँ ने पूना में आकर ऊधम मचाना आरम्भ किया था तो उसे परास्त करने का प्रबंध इसी गढ पर किया गया था उसका वृत्तान्त यहाँ देना अनुचित न होगा।

महाराज के साथी इस समय पचीस मावले लोग, तानाजी मालुसरे और यसाजी कंक थे। ये लोग किसी बरात में शामिल हो शाइस्ता खाँ के मकान पर पहुंचे। यह वही मकान था जहाँ शिवाजी ने बाल्यावस्था में दादोजी कोंडदेव से शिक्षा पाई थी। इसलिए, महाराज इस मकान से पूरी तौर से परिचित थे। महाराज ने किसी खिड़की से मकान के भीतर प्रवेश किया। उस समय खाना पीना मौज के साथ हो रहा था। मगर किसी प्रकार खिड़की में से जाते हुए यह लोग पहचान लिए गए और महल में घबराहट मच गई। जब अधिक शोर गुल मचा तो अवसर देखकर यह लोग कोंडाणागढ की ओर भाग आए। इस गढ को अधिकृत करने और बदमाश मरहठों को सजा देने के लिए

शाइस्ताखाँ ने सेना भेजी ; परन्तु मरहठों के सामने सेना की कुछ न चल सकी। ज्योंही सैनिक लोग विफल होकर वापिस आए त्योंही मावलों ने जो बीच में ही छिप कर बैठ गए थे उनके ऊपर हमला कर दिया और उनकी बुरी दशा की। तब से इस किले पर किसी की नज़र न जाती थी। ईसवी सन १६६४ में सूरत लूटने के बाद जब महाराज ने शहाजी का मृत्युसमाचार सुना तो शोक से व्याप्त होकर वह यहीं रहे और उन्होंने शहाजी महाराज की उत्तर क्रिया इसी गढ़ पर की।

तदन्तर १६६५ ई० में, जयसिंह ने बड़ी चालाकी से इस गढ़ पर अधिकार किया और अपने लोग वहाँ रक्खे। इसके बाद औरंगजेब ने शिवाजी को राजा का खिताब दिया और उनसे सुलह की। उसके अनुसार सब गढ़ शिवाजी को लौटा दिये गये परन्तु 'कोंडाणे' और 'पुरन्दर' नहीं वापिस किए गए क्योंकि यह क़िले उस प्रदेश के मानो नाक थे। गढ़ को हाथ से जाते देख महाराज को बड़ा खेद हुआ। वह चाहते थे कि किसी प्रकार ये गढ़ ले ले। किन्तु औरंगजेब से जो सुलह हुई थी उसकी शर्तें तोड़ने का कोई योग्य कारण अभी तक नहीं मिला था, और इसीलिए महाराज रुके हुए थे। इस समय उदयभानु का आगमन और उसके बारे में जो खबर मिली थी सो अच्छा कारण था। कोंडाणे फिर से ले लेना मानों मुगलों की नाक काट लेना ही था और इसीलिए तानाजी की योजना इस कार्य पर की गई। महाराज तो चाहते थे कि यह कार्य खुद ही करें परन्तु तानाजी ने नहीं माना। उसने प्रतिज्ञा की कि दस-बारह रोज के भीतर ही मैं गढ़ ले लूँगा. पर साथ में यह भी शर्त रक्खी कि महाराज उस स्थान से न हिलें। इससे महाराज

को कैद हुआ क्योंकि महाराज को विश्वास था कि तानाजी अपनी प्रतिज्ञा को जल्द ही पूरी कर लेगा।

कोंडाणा एक विशाल किला है। समुद्र की सतह से वह ४३०० फीट और पूना से कहीं २३०० अर्थात् २५०० फीट ऊँचा है। इस पर चढ़ने के लिए सुगम मार्ग नहीं है—बल्कि कहना चाहिए कि मार्ग ही नहीं है। इस समय इसके दो दरवाजे दिखाई देते हैं, परन्तु सुनते हैं कि पूर्व काल में इसमें एक दरवाजा और था।

इनमें से एक 'पूना दरवाजा' कहलाता है और इस दरवाजे से होकर पूना से आने वाले लोग गढ़ पर चढ़ते हैं। दूसरा 'कल्याण दरवाजा' है जो कल्याण शहर की तरफ है। ये दोनों आज तक खड़े हैं। किन्तु पहले, 'झुंझार' बुर्ज और 'कलावती' बुर्ज के बीच में जो खड़ा है उसके दक्षिण में, 'झुंझार' बुर्ज की बगल में, एक दूसरा दरवाजा था जिसका निशान तक आज दिखाई नहीं देता।

इस गढ़ की सीमा पर कोली लोग रहते थे। इन्हीं में से एक, जिसका नाम रायजी था, इस चढ़ाई के समय गढ़ का सरदार या प्रधान चौकीदार था। जब तक कि उदयभानु यहाँ नहीं आया था, इस गढ़ की रक्षा विशेष देखभाल के साथ नहीं होती थी क्योंकि सब लोगों का खयाल था कि यह गढ़ नितान्त दुर्गम है। परन्तु उदयभानु बहुत डरता था कि कोई आकर शिवाजी से कमलकुमारी को भगा न ले जाय। इसी डर से वह उस गढ़ की रक्षा के विषय में बड़ा ध्यान देने लगा। उसने रायजी तथा दूसरे ग्रामों के पटेल और सब मुखिया लोगों को बुलाया और एक फ़रमान निकाला कि— कोई अजनबी शख्स, चाहे वह पुरुष हो, स्त्री हो या बच्चा, अगर किसी के घर रहने

के लिए आवे तो उसकी खबर पहले हमें गढ़ पर दी जाय। मेरे हुक्म के बाद ही वह प्रवेश कर सकेगा और हुक्म के बमूजिब उस शख्स के वापिस जाने पर उसकी इत्तिला हमको फिर दी जायगी। जितने रोज़ वह यहाँ रहेगा उतने रोज़ सुबह और शाम उसको हाजिरी देनी होगी। इस हुक्म के खिलाफ जो कोई जिस किसी को गढ़ के भीतर लावेगा उसे उसके साथ, दोनों को, गढ़ के ऊपर से नीचे के दर्रे में फेंक दिया जायगा।"

इस कठिन आज्ञा को सुन कर सब लोग घबड़ा गए। इस हुक्म का किसी के लिए अपवाद नहीं था। परन्तु उदयभानु के रहने के मकान में तो इसकी व्यवस्था बड़ी ही कड़ी थी। तमाम गढ़ के ऊपर बारह चौकियाँ थी और प्रत्येक चौकी के ऊपर एक एक धीवर का पहरा रक्खा गया था। इन पहरेदारों को सख्त हुक्म था कि वे एक पहर में तीन बार गश्त किया करें और अपनी दाहिनी तथा बाईं तरफ की चौकियों के पहरेदारों से वचन लिया करें। इस प्रकार तमाम रात उन धीवरों को जागना पड़ता था। परन्तु ये धीवर लोग ही केवल उस गढ़ के रखवाले नहीं थे। गढ़ की दीवार के चारों ओर, लगभग तीन चार गज नीचे, बाहर की तरफ भी चार पाँच हाथ चौड़ी जगह थी। यहाँ पर महार लोगों का पहरा रहता था। सब से अधिक परिश्रम का काम इन्हीं लोगों का था और पहरे की जगह भी बड़ी विकट थी।

उदयभानु ने इन सब को बुलाकर ताकीद की और स्वयं तमाम जगहों पर जाकर स्थिति देखी।

जैसा कड़ा बन्दोबस्त बाहर की तरफ किया गया था वैसा ही ऊपर की तरफ भी किया गया।

आठवाँ परिच्छेद

तोताराम चारण

रायजी सरक्षक के यहाँ लड़की की शादी थी। शादी के लिए लोग इकट्ठे होने वाले थे। उस समय इस प्रान्त में धीर-प्राय बस हुए थे। मानो वह गाँव ही उन लोगों का था। और राय जी सरक्षक की तो बात ही और थी। वह तो एक प्रकार से अपनी जाति के राजा ही थे। तिस पर भी, उनकी बेटी की शादी! वाजिबी बात थी कि आसपास के गाँवों से लोगों के झुंड के झुंड आते। परन्तु उदयभानु का सख्त हुक्म था कि गढ़ की सीमा के अन्दर कोई मक्खी तक न आने पावे। अर्थात्, राय जी उदयभानु से इजाजत लेने गए।

पहले तो उदयभानु ने साफ इन्कार कर दिया। रायजी को बहुत खेद हुआ—थोड़ा क्रोध भी हुआ। किन्तु क्रोध से काम न चलेगा, जरा धीरे ही धीरे काम लेना चाहिए—यह सोच उन्होंने उदयभानु से कहा, "सरकार! इजाजत देना न देना आप के हाथ में है, मगर हमारे घर शादी है और इस समय अगर मैं अपने जान पहचान वाले लोगों को न बुलाऊँगा तो कैसे काम चलेगा। सम्बन्ध तो पूना वाले लोगों से है—अगर वह गढ़ के भीतर न आने दें तो कार्य कैसे हो सकता है? आप की इजाजत नहीं होगी तो थोड़ी देर के लिए हम सब

धीवर बाहर चले जाएँगे। विवाह-समारम्भ खतम हो जाने के बाद फिर वापिस आ जाएँगे। तब तक आप अपना पहरा सँभालिए। इसके सिवाय दूसरा उपाय तो हमें कोई सूझता नहीं।

रायजी उदयभानु से साफ़ साफ़ क्रोध के साथ बातचीत नहीं कर सकते थे। पर, उनकी बोली में क्रोध और खेद की झलक थी, यह बात उदयभानु ने जान ली। थोड़ा विचार करने के बाद उसे अनुताप हुआ। वह बोला, "रायजी! इजाज़त देने के लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु सब लोगों की गिनती कैसे रह सकती है?"

रायजी ने उत्तर दिया, 'हाँ सरकार! झूठ कैसे कहा जाय। गिनती नहीं रह सकती। हमारे लोग तो गिन-गिनाए ही हैं, पर, कब कितने और आजाएँगे—यह नहीं कहा जा सकता। हाँ अगर कोई संदेह के लायक व्यक्ति आएगा तो मैं जिम्मेदार हूँ। लेकिन अगर आप किसी को न आने देंगे तो काम ही कैसे चलेगा? इससे तो हम सब लोगों को छुट्टी देना ही अच्छा है। हमारे घर तो है शादी; फिर—इसको नहीं आना होगा, उसको नहीं आना होगा—यह सब कैसे चल सकता है?"

रायजी अपनी कीमत को अच्छी तरह समझता था; वह जानता था कि गढ़ के संरक्षक मस्त राजपूतों को हम लोगों की कितनी जरूरत है। इसी लिए राय जी को इतना अकड़ कर बोलने का साहस हुआ। और रायजी के अकड़ कर कहने पर भी उदयभानु क्रुद्ध नहीं हुआ या उसने अपना क्रोध बाहर प्रकट नहीं किया— इसका कारण भी वही था। वह जानता था कि यदि ये लोग छोड़ कर चले जाएँगे तो यहाँ बुरी अवस्था होगी, और न वह इस बात को विचार में ला सकता था कि इन्हें गढ़ छोड़ जाने की इजाजत दी जाय। विवाह-कार्य के

लिए लोग अवश्य आएँगे ही। और उन्हें आने से रोकना असंतोष फैलाना है। यह बात इष्ट नहीं था। परन्तु रायजी को उत्तर किस तरह दिया जाए—इसकी उदयभानु को चिन्ता हो रही था। अगर रायजी की बात तुरन्त स्वीकार करते हैं तो हमारी प्रतिष्ठा कम होती है और अगर इनकी बात नहीं मानते हैं तो ये लोग छोड़ कर चले जाएँगे। रायजी को खुश करने तथा अपनी भी प्रतिष्ठा रखने के लिए वह बोला, "अजी, मैं यह थोड़े ही चाहता हूँ कि तुम शादी वगैरा न करो और बिरादरी के लोगों को न बुलाओ। बादशाह के तुम लोग बहुत पुराने नौकर हो। तुमसे इस तरह कौन मना करेगा— तुम्हारा अविश्वास कौन करेगा। हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने तुम से कड़े शब्द कहे, मगर तुम जानते हो कि ये दिन ठीक नहीं है। वह लुटेरा शिवाजी अवसर ताक रहा है। शायद इसी मौके पर अपने गाफिल रहने का वह फायदा उठाए। रायजी! अगर तुम जैसे इमानदार और वफादार लोग किसी गैर आदमी को अन्दर न आने देने की चिन्ता रक्खो तो—बस! हमको और क्या चाहिये। मुझे तुमको इस विषय में सचेत करना था। इसलिए मैं इतने आवेश से बोला। शादी जरूर होने दो। तुम्हारे घर की शादी मेरे ही घर की शादी है रायजी! तुम जैसे हेकडी-बाज लोगों को जरा चिढाने में मजा आता है। वरना, ऐसा कहीं हुआ है कि अपने पुश्तैनी नौकर के घर तो शादी हो और उसकी बिरादरी का आने से रोका जाय। जितने आदमी बुलाने की इच्छा हो उतने बुलाओ—उन्हें आने दो, जाने दो— मेरा कोई एतराज नहीं है, परन्तु इतना ध्यान रखना कि शत्रु का जासूस न आने पाये। बस, इतना ही खयाल रखना—और इससे मैं क्या चाहता हूँ।"

रायजी कच्चे गुरू का चेला नहीं था। उसने जान लिया कि मेरे रूखेपन और अकड़ की वजह ही से इन महाशय ने यह लम्बा चौड़ा और मीठा व्याख्यान दिया है। वह बोला, "हम यहाँ खानदानी और पुश्तैनी नौकर तो जरूर हैं परन्तु जब आप हमें उस तरह मानेंगे और हमारा विश्वास करेंगे तभी तो उसका फ़ायदा है। आप पहरे वालों और किलेदारों को देखिए। वे हमारे ऊपर विश्वास रख कर रात को गहरी नींद सोया करते थे। पर किसी की भी ताकत नहीं थी कि इस किले के ऊपर टेढ़ी नजर करे। अगर कोई आ भी जाए तो हम नीचे के नीचे ही उसका समाचार लेते हैं। मुझे दिन बहुत नहीं लगेंगे— अधिक से अधिक शिवरात्रि तक। शिवरात्रि के बाद फिर वैसी ही कड़ी व्यवस्था रक्खी जायगी और सब लोगों की हाजिरी दिलाई जा कर आप को निश्चित किया जाएगा। पर सरकार आज यदि आप छुट्टी न देंगे तो हमारा रह ही क्या गया! हमारी बिरादरी पर हमारा रोब कैसे रहेगा? आप के नौकर कहला कर हम छाती ऊँची करके घूमते हैं, — अब इस अवसर पर यदि हमें अपने इष्ट मित्रों तक को बुलाने का अधिकार नहीं तो हम कोई भी चीज न रहे। इसीलिए मैं ने आप से यह प्रार्थना की थी। आप ने कृपा करके हमें इजाजत दे दी,— अब हमारा उत्साह भी दुगना हो गया है।

रायजी के इस भाषण से उदयभानु खुश हुआ। उसने उनसे बड़ी होशियारी से रहने के लिए कहा और नजदीक के गाँव के अधिकारी-वर्ग को लिख भेजा कि—'शिवरात्रि तक रायजी के घर जो कोई आए उसे इजाजत दी जाए—रोका न जाय। यह हुक्म रायजी ने अपनी चौकी पर आते ही तमाम

अधिकारी वर्ग के पास भेज दिया। इस प्रकार रायजी के इष्ट मित्रों के आने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं रही।

गढ़ के सरनक के यहाँ शादी थी—उसका पूछना ही क्या था। इधर-उधर से लोग इकट्ठे होने लगे और विवाह समारम्भ—भोजन आदि— शुरू होने लगे।

इन मजुए लोगों में अनेक कुलों व आचार विचार रीति-रिवाज होते थे और अनेकों देवताओं के प्रीत्यर्थ अनेक प्रकार के समारम्भ हुआ करते थे। रायजी दिलदार खर्चीला मनुष्य था—उसे खर्च की परवाह नहीं थी। वह केवल चाहता था कि किसी प्रकार की कमी न रह। पानी के समान पैसा खर्च होने लगा। इस विवाह-समारम्भ का यहाँ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। केवल एक खास घटना कहनी है।

रायजी का सम्बन्धी दौलतराव पूना का रहने वाला था। उसने रायजी से कहा, "आप ने जैसा विवाह-समारम्भ किया वह बहुत ही बढ़िया हुआ। परन्तु अपने कुल के आचार के अनुसार गाने वाला जो बुलाओगे वह हमारी मारफत बुलाना। हमारा चारण बहुत ही लायक आदमी है। उसका गाना सुन लोगे तो उसे सदा के लिए ही रख लेने की तुम्हारी इच्छा होगी।"

रायजी को अपने गवैया का अभिमान था। वह भला इस बात को कैसे मानता। अन्त में, यह निर्णय हुआ कि दोनों गवैया का गाना दो दिन होना चाहिए। इसी विषय पर जब चर्चा हो रही थी, रायजी का एक रिश्तदार धीरे से बोला, "रायजी! गवैया तो ऐसा होना चाहिए जैसा कि तुलसी था। तुम्हें याद है, हम लोग कोडणपुर की यात्रा के लिए गए थे। वहाँ एक पेड़ के तले एक गवैया बैठा था। जब वह गाने लगा तो देवदर्शन करना

छोड़ सब लोग वहाँ जमा हो गए—देवालय में कोई भी नहीं रहा था। बस; वैसा ही गवैया होना चाहिए; दूसरा किसी काम का नहीं।'

दौलतराव एकदम बीच में बोल उठे, "अजी, बात तो सोलह आने कही! मैं जिस गवैये की तारीफ करता हूँ वह इस तुलसी का सगा भाई था—वह भी तो इसी का साथी था। चार महीने हुए होंगे, तुलसी का कहीं पता नहीं है। पर, यह उसका भाई तोताराम, उससे भी बढ़कर है। इसको उसी तुलसी ने, इसके भाई ने ही, शिक्षा दी है। तुम इसे ही निमंत्रण दो। तुलसी होता तो उसको बुलाए बिना न रहते। पर वह है कहाँ—उसका तो पता ही नहीं, अजी, तुम संदेह बिलकुल मत करो। हम भी तोताराम को बुलाने का ही इरादा कर रहे थे। परन्तु आपकी राय बिना ऐसा करना ठीक नहीं समझा।"

"वाह! आप उसे अपने साथ क्यों नहीं लेते आए? अगर लाए होते तो बैठ कर पाँच छै रोज़ उसका गाना सुनते। विवाह-मण्डली का दिल-बहलाव ही होता।"

"तो अब क्या हुआ! अब भी उसका गाना सुनकर चार पाँच रोज़ उसे यहीं रख सकते हो? वह तो अपना ही आदमी है। कहने से बाहर थोड़े ही जाएगा।"

इस प्रकार तोताराम चारण का ही गाना कराना निश्चित हुआ। उस समय तुलसीदास और अज्ञानदास, यह दो चारण, बहुत प्रख्यात थे। जब किसी बड़े घर वाले के यहाँ गाना हुआ करता तो इनमें से ही किसी एक को बुलवाया जाता। इनमें भी तुलसीदास प्राचीन वीरता के गीत गाने में प्रवीण था। तुलसीदास के न रहने से लोगों ने खेद मनाया। पर, उसका भाई गाने में उससे आगे बढ़ने की कोशिश करने लगा और जो लोग

तुलसीराम का जानते थे उनके यहाँ जाना आना शुरू किया। वैसे तो, नया होने के कारण बहुत ही थोड़े लोग उसे जानते थे। जिस समय उसने सुना कि दौलतराव के घर शादी है और वे बारात लेकर 'झोंडाणे' जा रहे हैं, तो वह उनके पास पहुँचा और उनके साथ चलने के लिए आग्रह करने लगा।

रायजी ने जब दौलतराव का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो दौलतराव ने अपने एक आदमी को तोताराम और उसके साथियों को बुलाने के लिए भेजा। तोताराम आया। किसी बात की कमी नहीं रही थी। केवल गाना ही होने को रहा था। नजदीक के गाँववालों ने जब सुना कि रायजी और दौलतराव ने एक प्रसिद्ध चारण को बुलाया है तो उस रात को बड़ी भीड़ हुई। दूर दूर से सुननेवालों की टोलियाँ आईं। गवैया बड़ा प्रवीण था। उसके साथियों ने साज सँभाला। गायक ने पहाड़ी बोली में ईशस्तवन शुरू किया। किन्तु पहले-पहल उसमें कोई रंग न आया। इसी प्रकार तीन चार चीज़ गाई गई। अन्त में उसने खड़ी आवाज़ में एक ऐतिहासिक कवित्त, जिसके लिए तोताराम मशहूर था, शुरू किया। पहले ही अलाप ने सब का चित्त आकर्षित कर लिया। उसकी आवाज़ इतनी ऊँची थी कि दूर थाने में बैठे हुए मनुष्य भी उसे सुन सकते थे। धीरे धीरे वह आवाज़ उस तमाम प्रदेश में गूँजने लगी। श्रोतागण तल्लीन होकर सुनने लगे।

नवाँ परिच्छेद

धिक्कार है उनकी ज़िन्दगी पर

सकल श्रोतागणों को पूर्ण सावधानता से गाना सुनते देख कर तोताराम ने एक ऐतिहासिक गान आरम्भ किया। उसका सारांश इस प्रकार है—

जय बोलो माता भवानी की। वह भक्तों के लिए दौड़ आती है। उस शिव शंकर को प्रणाम है कि जिसने अनेक अवतार लिए है—जिसने असंख्य असुरो को मार कर देवो का भार दूर किया है। दैत्यों ने धरित्री को सताया पर उसने उनके कुलों का निर्दलन किया। क्या वह हमें भूल जाएगा? उसको स्तुति करेंगे, वह फिर दौड़ कर आएगा। उसने भस्मासुर को मारा, उसने त्रिपुर को मारा, उसने जटासुर को मारा। उसने असंख्य असुरों को मारा है। वह दया का सागर है। उसको जय बोलो। असुरों ने उत्पात मचा रक्खा है। धर्म का संहार हो रहा है। जय बोलो माता भवानी की!

इस कलियुग मे राक्षस मुगलो के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। वे गो-ब्राह्मणो का नाश करते हैं। दीन, अनाथों को कष्ट देते है। पतिव्रता का अपमान करते हैं। घरों की स्त्रियों को खींच ले जाते है और हम लोग आँखो से देखते ही रह जाते है। वे गऊ को काटते है—उसका लोहू पीते हैं। क्या भवानी माता यह सब सह सकती है? क्या गिरिजापति यह सह सकते है? भवानी अपने

पति से कहती है—जाओ, पृथ्वी के ऊपर अवतार लो। तुरन्त जाकर धरिणी को मुक्त करो। यहाँ बैठे क्या करते हो। धर्म का नाश हो रहा है। पतिव्रताएँ प्राण दे रही हैं। क्यों आँखें बन्द किए हुए हो। अब भी करुणा आने दो। आँखें बंद न करो। जय बोलो माता भवानी की।

माता जी के ये शब्द सुनकर भोले शंकर जाग उठे। कहो, कहाँ अवतार लें। दुष्टों का संहार करूँगा। भवानी फिर शंकर से बोलीं—'शिवनेर' गढ जाओ। वहाँ मेरा एक भक्तिन है। वह भोसले कुल की है—उसका नाम 'जीजा' है। उसके गर्भ में अवतार लो। दुष्टों का संहार करो। शिव ने त्रिशूल लिया। शिव ने अंकुश लिया। जोर से डमरू बजाया। अपने गणों को बुलाया। शिवजी उनसे बोले— चलो, चलो, दुष्टों का मर्दन करें। मैं शिवाजी बनूँगा। तुम मावले लोग बनो। चलो अब तुरन्त चलो। पृथ्वी के ऊपर अवतार लें। जय बोलो माता भवानी की।

शिवनेर गढ का सौभाग्य क्या कहूं। शिवजी जीजाबाई के पुत्र हुए। मावले लोगों का सौभाग्य क्या कहूं। शिवगण मावलों के पुत्र हुए। वैसे ही कोकण का वह प्रदेश भी भाग्यवान हुआ जहाँ कि शिवगणों ने जन्म लिया। वैशाख शुक्ल पञ्चमी का सुदिन था। शाके एक सहस्र पन्द्रह सौ पचास का वर्ष था। संवत्सर का नाम 'प्रभव' था। सूर्यनारायण उदय हुए थे। जीजाबाई का पेट दर्द करने लगा। वह पृथ्वी के ऊपर लोटने लगी। परन्तु मुँह से क्या कहती हैं?—दैत्यों का जंगल काट डालूँगा, हाथ में तलवार लेकर। दुष्टों के मुंडों का ढेर लगा दूँगा। सूर्यनारायण आकाश के मध्य में आगए थे। गिरिजारमण ने अवतार लिया। समस्त गढ पर प्रकाश छा रहा था जब कि शिव बालक ने जन्म लिया। जय बोलो माता भवानी की।

बालक दिन दिन बढ़ने लगा। जीजाबाई को आनन्द देता रहता। गुरु 'दादोजी' कौतुक मनाते थे, क्योंकि वह जनता में होता था। बालक तीन वर्ष का हुआ। सारे गढ़ के ऊपर दौड़ा करता। जीजाबाई से तलवार माँगता और कहता—मैं लड़ाई का खेल खेलूँगा। बालक पाच वर्ष का हुआ। वह कैसे कैसे खेल खेलता! अपने साथियों को इकट्ठा करता। कहता—बीजापुर के ऊपर चढ़ाई करें। मैं तुम्हारा राजा बनूँगा। तुम सब मेरी प्रजा बनोगे। दुष्टों को पकड़ लाएँगे। उनकी गर्दन मरोड़ देंगे। मैं गो-ब्राह्मण का प्रतिपालन करूँगा। मैं मुगलों को काटूँगा। वह ऐसे ऐसे खेल खेलता। माता के मन को संताप हुआ। जय बोलो माता भवानी की!

बालक दस वर्ष का हुआ। राजा उसे बीजापुर ले गए। राजा शाह जो बालक से कहते—चलो बादशाह के दरबार में चलो। बालक बोला—महाराज, दरबार को चलेंगे। परन्तु बादशाह को कोर्निस नहीं करेंगे। केवल देवता को प्रणाम करेंगे। केवल मातापिता को प्रणाम करेंगे। केवल गुरु को प्रणाम करेंगे। पर मुगलों को नहीं। पुत्र के वचन सुनकर महाराज बहुत बिगड़े। जबरदस्ती साथ ले गए। बादशाह के पास खड़ा किया। पर उसने सिर नहीं झुकाया। उसने हाथ नहीं उठाया। अभिमान से बादशाह को देखा। सब लोग ताकने लगे। बादशाह ने कहा—बालक, कोर्निस करो। बालक ने कहा—प्रणाम परमेश्वर को करेंगे। तुम्हारे सामने क्यों झुकें! झुकना केवल ईश्वर के सामने! मैं दरबार से जाता हूँ। महाराज, आप पीछे से आना। मैं यहाँ नहीं बैठ सकता। माताजी बिना मुझे चैन नहीं पड़ता। जय बोलो माता भवानी की।

इतना कह कर बालक निकला। रास्ते में उसने क्या देखा?

एक ब्राह्मण को दान मे एक गाय और बच्चा मिला था। वह बड़ हर्ष मे उसे ले जाता था। रास्ते में एक कसाई की दूकान पड़ी। गौ को देख कसाई ने ब्राह्मण को रोका। बोला—मुझे यह गौ दे दे। ब्राह्मण चिल्लाने लगा। कसाई छुरा लेकर दौड़ा। गौ भाग गई किन्तु उसने बच्चे को पकड़ लिया। ब्राह्मण दीनता से हाथ जोड़ कर बोला—मैं विनती करता हूँ, माता से बच्चे को अलग न कर। कसाई हँसकर बोला—ऐसे बहुत से बम्हने देखे हैं। इस बछड़े को तुम्हारे सामने काटेंगे और इसके लोहू मे तुम्हारा मुँह भर देंगे। उसने बछड़े को पकड़ कर धरती पर गिरा दिया और मारने के लिए हाथ ऊँचा किया। जय बोलो माता भवानी की।

तो सुनो क्या आश्चर्य हुआ। उसका हाथ टूट गया। पीछे एक दस वर्ष का बालक तलवार उठाए था। यह देख लोग विस्मित हुए। उसकी ओर खड़े खड़े ताकने लगे। उसने ब्राह्मण को एक मोहर दी और बछड़े को निर्भयता से घर ले जाने को कहा। इतना कह कर बालक पालकी में चढ़ा। लोग निश्चल दृष्टि से देखते रहे। बालक ने उसी दिन निश्चय किया कि मैं बीजापुर में नहीं रहूँगा। राजा शाहजी से कहा—मुझे पूना भेज दो। बालक का यह निश्चय देख राजा शाह जी क्रुद्ध हुए। बालक ने खाना पीना छोड़ दिया। तब उसे पूना भेज दिया। उस दिन से वह चिन्ता करने लगा कि गौ माता की कैसे रक्षा होगी? बचपन के साथी इकट्ठे कर गौ ब्राह्मण की रक्षा करूँगा। मुगलों ने देश वे चिराग कर दिया है। उन्हें मैं ध्वस्त करूँगा। कोकण से हेटकरी लोग मिलाए। उन्हे युद्ध-कला सिखाई। उसी प्रकार मावल देश के मावले इकट्ठे किए। उन्हें शूर सिपाही बनाया। जय बोलो माता भवानी की।

सेना को साथ लिया। 'तोरण'-गढ़ पर अधिकार किया और

महरठों का झंडा खड़ा किया। एक दूसरा गढ़ था 'चाकण'। उसे लेने का इरादा किया। उसका रक्षक 'फिरंगोजी' बड़ा शूर-वीर था। उसे शिवाजी ने क्या कहला भेजा ? सुनो—जो गो-ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए, स्वराज्य-स्थापना करने के लिए मेरे निकट दौड़े आएँगे वे मेरे भाई हैं। और जो मुगलों के नौकर हैं उनकी ज़िन्दगी पर धिक्कार है। तुम फिरंगोजी, शूर मर्द हो। तुम्हारा अभिमान कहाँ है ? किस की सेवा तुम कर रहे हो ? थोड़ा इसका विचार तो करो। गौ अपनी माता है, इसको गर्दन मुगल काटते हैं। तुम्हारी वीरश्री कहाँ है ? तुम उन दुष्टों की सेवा करते हो। क्या तुम्हारी लज्जा कहीं भाग गई है ? तुम्हारी जिन्दगी के ऊपर धिक्कार है। अपनी माता-बहन को सँभालो। क्या उन्हें भी मुगलों के हाथ सौंप दोगे ? तुम्हारी शर्म कहाँ गई ? धिक्कार है तुम्हारी ज़िन्दगी पर। अपना घर किन्होंने डुबाया ? कौन मुगलों को यहाँ लाया ? क्या इस सब पर विचार किया है ? धिक्कार है तुम्हारी जिन्दगी पर ! शिवाजी ने जब ऐसा कहलाया, फिरंगोजी का मन बदल गया। बोला—महाराज, मैं आज से आप का दास बना। चाकण गढ़ हाथ आया। फिरंगोजी बंधु हुआ।

जैसे जैसे चारण गीत के पद कहने लगा वैसे ही वैसे उसका आवेश बढ़ता गया और, मानों उसी के संसर्ग से प्रत्येक श्रोता की भुजाएँ फड़कने लगीं। जिस समय चारण किसी पद पर विशेष जोर देना चाहता या जब उसका आवेश बढ़ने लगता तो वह तुरन्त कुरता उठा कर अपना हाथ मूछों पर ले जाता। अन्त में जब 'धिक्कार है तुम्हारी ज़िन्दगी पर' इस चरण को एक के बाद एक कर करके वह आवेश के साथ बार बार गाने लगा तो श्रोताओं के शरीरों में वीरता का ओज छाने लगा। जो लोग पहले

आलस्य से टेढ़े-से बैठे हुए थे वे अब सँभल कर वीरासन में बैठ गए। ये सब लोग मुगलों की नौकरी करते जरूर थे परन्तु किसी के हृदय में मुगलों के प्रति भक्ति या श्रद्धा नहीं थी। "श्रीशंकर जी ने प्रत्यक्ष अवतार धारण किया और दुष्ट मुगलों को दण्ड देने के लिए ही उनका प्रयत्न है। अभी तक जितने प्रयत्न किए गए हैं सब इसी के लिए किए गए हैं। केवल गो, ब्राह्मण तथा अनाथों का कष्ट दूर करने के लिए उनकी तमाम कोशिश है। अतएव, ऐसे पुरुष का इस कार्य में जो सहायता न करेंगे बल्कि जो उनसे छल करने वालों की सहायता करेंगे वे कृतघ्न हैं। उनकी जिन्दगी पर धिक्कार है।"— इस आशय के पद कहते हुए तोताराम को जोश आगया। वह उठ खड़ा हुआ। दोनों हाथ ऊँचे किए हुए और एक चक्कर लगा कर उसने दोनों हाथ उनकी ओर फैलाए, मानो उनसे कहता था—"जैसे शिवाजी महाराज ने फिरंगोजी से कहा था वैसे ही मैं भी तुम से कहता हूँ। क्या तुम्हें शर्म नहीं मालूम होती? अगर शर्म न मालूम होती हो तो तुम्हारी जिन्दगी पर धिक्कार है।" चारण के इस तरह के भाव से सब के अन्तःकरण हिल गए। कविता कैसी भी हो, यदि गाने वाला अपना हृदय उसमें मिला दे तो सुनने वालों को अपने वश में कर सकता है—इसका प्रत्यक्ष अनुभव उन लोगों ने वहाँ पर पाया। पहले इधर उधर शान्ति थी। अब हरेक तोताराम की ओर ताकने लगा। थोड़े ही समय में शान्ति के स्थान में कानाफूसी होने लगी। रायजी को तो सुध तक न थी। दौलतराव की भी यही अवस्था थी। उसने चारण को कुछ इशारा किया और चारण यह कह कर कि 'मुझ से अब गाया नहीं जाता' चुप होकर बैठ गया। लोग भी धीरे धीरे जाने लगे, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के हृदय के

ऊपर विलक्षण प्रभाव था। हरेक यही सोचता था कि हम जो मुगलों की सेवा करते हैं सो अच्छा नहीं है। तोताराम ने हमारी ज़िन्दगी को धिक्कारा सो उचित ही किया। हमें स्वयं ही अपनी ज़िन्दगी को धिक्कारना चाहिए। इस प्रकार मन में तर्क करते और आत्मनिन्दा करते हुए तथा 'अब आगे क्या करना चाहिए' यह सोचते हुए लोग अपने अपने स्थानों को गए।

रायजी के ऊपर इस गाने का अद्भुत प्रभाव हुआ। उसने सोचा कि—अवश्य यह मनुष्य कोई सचमुच का चारण नहीं है बल्कि शिवाजी महाराज का ही आश्रित कोई वीर पुरुष है। इस बात का निश्चय करने की उसे इच्छा हुई। जब तमाम भीड़ चली गई तो वह तोताराम को अलग ले गया और बहुत धीरे से बोला—" तोताराम, तुम चारण नहीं मालूम होते हो। चारण के वेश में तुम दूसरे कोई हो। मुझ से छिपाए रह कर अब काम न चलेगा। साफ़ साफ़ बतला दो।"

तोताराम मानो इस अवसर की ताक में ही था। उसने निश्चय किया था कि रायजी के पूछते ही वह उसकी मुगलों की सेवा की खूब निन्दा करेगा और यदि हो सका तो कुछ झगड़ा भी कर लेगा। इसी के लिए उसने इतना कष्ट उठाया था। जिस प्रकार कोई मनुष्य प्रयत्न द्वारा इष्ट अवसर पाते ही इष्ट फल की प्राप्ति कर लेता है ठीक उसी प्रकार उस गवैये का व्यवहार दिखाई पड़ा। रायजी के एकान्त में यह प्रश्न पूछते ही वह एकदम बोल उठा—" रायजी, इस बात को तुम से छिपाए रखने का यदि मेरा इरादा होता तो मैं इतना झंझट ही न करता। मैं तुमसे साफ़ साफ़ कहता हूँ कि मैं तुलसीदास का भाई तोताराम नहीं हूँ। मैं शिवाजी महाराज का सेवक हूँ। मुझे अपनी इस नौकरी का अभिमान

है। मुझे 'तानाजी' कहते हैं और मैं तुमसे मिलने के लिए ही आया हूँ। सीधे तुमसे मिलने की अपेक्षा अन्य सब लोगों को भी जागृत कर फिर तुमसे मिलना ठीक होगा, यह विचार करके ही मैंने यह भेष धारण किया। मैंने तुम्हें जगाया है—अपना कर्त्तव्य किया है—अब जो तुम्हें उचित मालूम हो सो तुम कर सकते हो।"

'तानाजी'—यह नाम सुनते ही रायजी की आँखें खुल गईं, माना वह सोच रहा था कि मैं जागृत अवस्था में हूँ या स्वप्न में। लगभग पाँच मिनट के बाद उसने तानाजी से धीरे से कहा—"तानाजी, तुम्हारा साहस बड़ा जबरदस्त है। मान लो कि मेरी जगह यदि मैं न होकर, मुगलों का पूरा सेवक कोई दूसरा मनुष्य होता, तो वह तुम्हें तुरन्त किले में ले जाकर उदयभानु के सामने खड़ा कर देता और फिर किसी बुरी तरह से तुम्हारी जान ले डालता।"

"रायजी", तानाजी ने शान्ति के साथ मुस्करा कर कहा, "स्वामी की आज्ञा का पालन करते समय जान चुराना क्या ठीक है ?"

"हाँ, कभी कभी ऐसा करना पड़ता है।" यह जवाब देकर रायजी तानाजी का उत्तर जानने के लिए उसकी ओर देखने लगा।

तानाजी ने उत्तर दिया, "हाँ, कभी कभी—सदा नहीं। यह अवसर विचार करने का न था और मुझे यह विश्वास हो गया था कि आप मुगलों के परम भक्त नहीं हैं।"

"यह कैसे ?" रायजी ने फिर पूछा।

"मनुष्य का स्वभाव पहचानने की कला मुझे बचपन से ही

मालूम है", तानाजी ने उत्तर दिया। वह थोड़ी देर चुप रहा, फिर बाद में बोला,. . "आपने इतना मुझसे पूछा और मैंने भी उसका उत्तर दिया। अब आगे क्या करोगे सो कहो। मैं यह निश्चय कर आया हूँ कि साहस करके कार्यसिद्धि कर जाऊँ या प्राण अर्पण कर दूँ। तरह तरह की युक्तियों से मैं आपके समीप पहुँच सका हूँ। मुग़लों की तावेदारी अगर आप चाहते हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। मुझे ऊपर ले जाओ और किले पर से नीचे की खाई में ढकेलवा दो। अगर तावेदारी नहीं चाहते हो तो गढ़ पर अधिकार करने में मुझे सहायता दो। आपकी सहायता मैं केवल इतनी ही चाहता हूँ कि गढ़ के ऊपर चढ़ने के लिए सुगम मार्ग ढूँढने का हमें अवसर दिया जाए और यदि इधर को ओर तथा दूसरी ओर से दो चार सौ आदमी गुप्त रूप से आवें तो उनकी सूचना ऊपर न पहुँचने पाए। इसके उपरान्त लड़ने का काम हम स्वयं ही कर सकते है। बस, रायजी, अब अपने मन का निश्चय कहो—महाराज को सहायता देकर हिन्दू धर्म की रक्षा में भाग लो या मुझे गिरफ़ार करके ऊपर ले चलो। अधिक वातचीत से कोई लाभ नहीं।"

तानाजी के ये शब्द सुन कर रायजी कुछ देर चुप रहा। तदनन्तर उसने कहा, "ठीक है। मैं तुम्हे सहायता देता हूँ। जब महाराज ने यह गढ़ मुग़लो को सौंपा था तो हमे बड़ा दुःख हुआ था। पर, महाराज को उस समय दूसरा उपाय ही न होगा। तानाजी, तुम्हारा साहस बड़ा जबर्दस्त है। इतने जन-समाज में तुमने गाना गाया और बड़े आवेग के साथ तुमने सब की जिन्दगी को धिक्कार दिया इस से बढ़ कर शूरता की और कौन सी बात हो सकती है? इस प्रदेश के तमाम मछुवे लोग और ऊपर के महार लोग तुम्हारे अनुकूल है, ऐसा तुम समझ

लो। यहाँ एकत्रित हुए लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अनुकूल विचार का ही होगा। उसको बस कहने भर को ही देर है कि वह तुरन्त आज्ञापालन करेगा। कोई पन्द्रह दिन बीते होंगे कि मैं महार लोगों के मुखिया से मिला था। उस समय हम यही कह रहे थे कि महाराज का मुगलों को कोंकणगढ देना ठीक नहीं है। उसे मैं तुमसे मिलाने के लिए बुलवाता हूँ और तब हम लोग निश्चित करेंगे कि अब आगे क्या करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दौलतजी की सम्मति भी लेंगे जिनकी सहायता से कि तुम यहाँ तक पहुँचे हो।"

यह सुन कर तानाजी मुस्करा कर बोला, 'वह तो हमारे अनुकूल हैं। मैं कौन हूँ इसे वह जानते हैं और वही हमें यहाँ लाए हैं। वह हमारे बचपन के पूना के स्नेही हैं।"

जिस स्थान से जगतसिंह गिरा था यदि वहाँ से वह सीधा जाकर न पड़ता तो उसके मस्तक के टुकड़े टुकड़े हो जाते, परन्तु वह सीधा हीं गिरा जिससे वह एक सघन वृक्ष के ऊपर जाकर पड़ा और वृक्ष के नीचे खड़े हुए एक मनुष्य के सामने लटक रहा। उस वृक्ष के नीचे दो मनुष्य खड़े हुए थे और उन्हीं मे से एक ने जगतसिंह के तीर मारा था। ये मनुष्य कौन थे और इस समय वे यहाँ क्या कर रहे थे, इसका परिचय देकर हम आगे बढ़ेंगे। उनका परिचय मालूम हो जाने पर इस राजपूत का वृत्तान्त भी मालूम हो जाएगा।

वृक्ष के नीचे छिपे हुए मनुष्य ताना जी और राय जी थे। जैसा कि पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है, राय जी ने ताना जी को मदद देने का अभिवचन दिया था। उसके अनन्तर शेलारमामा, रायजी दौलतराव और तानाजी की एक बैठक हुई जिसमें शपथ लेने की रस्म पूरी की गई। शेलारमामा तानाजी को रायजी के साथ छोड़ स्वयं अपने मावला लोगों को लाने के लिए चला गया। शेलारमामा के चले जाने के बाद दूसरे ही दिन रायजी ने एक बार किले पर की व्यवस्था देखने के लिए एक चक्कर लगाया और साथ में तानाजी को सब जगह घुमा कर क़िले के सब पहलू समझाए। उन्होंने जगह जगह ठहर ठहर कर देखा कि किस स्थान से चढ़ने में सुभीता होगा। तदनन्तर उन्होंने इस पर विचार किया कि कमन्द लगाना किस ओर से सुगम होगा तथा एक बार इसकी परीक्षा करने का निश्चय किया। जिस रात को उन्होंने इस तरह की परीक्षा का निश्चय किया था उस रात को नियत स्थान पर पहुँचने पर उन्हें सन्देह हुआ कि कुछ दाल में काला है। जिस समय उन्होंने देखा कि कोई आदमी ऊपर से उतरने का प्रयत्न कर रहा है उस समय उनको भय हुआ कि शायद किसी को इसका भेद लग गया हो

और वह पकड़ने के लिए नीचे उतरता हो या ऊपर खबर देने के लिए शायद कोई महार चढ़ता हो। रायजी का कहना था कि ऐसे अवसर पर भाग जाना अच्छा नहीं बल्कि उस आदमी को ही शिक्षा देना उचित है। तानाजी कहता था कि ऐसा करने में यदि वह आदमी जख्मी होगया तो उदयभानु को संदेह हो जाएगा और तब वह कोई विशेष बंदोबस्त करेगा जिससे हम लोगों को अवसर मिलना कठिन होगा।

परन्तु रायजी को यह पसन्द नहीं था। उसने कहा, "तानाजी, तुम क्यों डरते हो? यह आदमी कोई सिपाही नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह कोई भेदी महार सूचना देने ऊपर जा रहा है। अगर उसे घायल करके गिरा लेंगे तो कोई पूछेगा भी नहीं, और जो यह ऊपर जाकर हमारी सूचना दे देगा तो बड़ी मुश्किल होगी।" यह कहते कहते उसने एक तीर ऊपर मारा। वह तीर जाकर जगतसिंह के लगा जिससे वह नीचे वृक्ष पर गिर पड़ा और लटकता रहा। पहले तो उन लोगों ने उसे वहीं छोड़ देने का विचार किया। रायजी ने कहा कि, "इसे इसी तरह लटकते देख लोग समझेंगे कि यह ऊपर से गिर पड़ा है और फिर अधिक पूछताछ नहीं करेंगे। इसलिए ऐसे ही चले चलना ठीक होगा।" पर, फिर उसने सोचा कि, "इसके तीर लगा है, अवश्य लोग संदेह करेंगे। अतः इसे चट्टान पर से नीचे ढकेल देना चाहिए।" परन्तु तानाजी इससे सहमत न था। घायल आदमी के ऊपर पुनः चोट करना या उसे वैसे ही मरने देना उसको पसन्द न था। साथ ही उसने यह भी सोचा कि जीवन-दान दे देने से इससे ऊपर की व्यवस्था भी मालूम हो सकेगी। अतएव उसे नीचे उतार कर अपनी झोपड़ी पर लेजाना ही उसे उचित मालूम हुआ।

तानाजी की यह सलाह रायजी ने पसन्द की। उन दोनों ने जगतसिंह को वृक्ष पर से उतारा और वे उसे अपनी झोपड़ी पर लेगए। जगतसिंह की आयु का तन्तु मजबूत था।

जिस समय तानाजी और रायजी ने जगतसिंह को उठाया उस समय वह बेसुध था। जहाँ पर उसके पैर में चोट लगी थी वहाँ से रुधिर टपक रहा था। झोपड़ी पर पहुँचने के बाद रायजी ने उसके पैर का जख्म किसी पत्ती के रस से भर दिया और उसे कपड़े से बाँध दिया। थोड़ी देर में रक्तस्राव बन्द हुआ और जगतसिंह को चेतना आई। मछुवे तथा मावली लोग घाव बाँधने की इस क्रिया में बड़े चतुर होते हैं। रायजी और तानाजी भी इस काम में पूरे जानकार थे। सैकड़ों बार ऐसे जख्मों पर दवा लगाने का अवसर उन्हें मिला था। एक छोटे से जख्म का उपचार करना उनके लिए कोई बड़ी बात न थी।

जगतसिंह भी वास्तव में बड़ा वीर था। वह केवल इस जख्म से ही इतना विह्वल न होता क्योंकि सैकड़ों ही बार उसे ऐसे जख्म लगे थे। उसके अचेत होने का और भी कारण था। वह किसी विशेष उद्योग में लगा हुआ था। इसी समय यकायक उसके मर्मस्थान में चोट लगी जिससे नील, रस्सी आदि सब कुछ टूट गई और उसको अनुमान न हो सका कि वह कितनी ऊँचाई से गिरा है। अचेत होने के लिए इतने मानसिक विकार काफी थे। यही जगतसिंह समर में सैकड़ों तीरों से भी न डरता और सामने खड़े हुए शत्रुओं से बड़ी सुगमता के साथ युद्ध करता।

अस्तु, ऊपर के कथनानुसार उन दोनों के उपचार से उसका रुधिर बहना बन्द हुआ और वह होश में आया। परन्तु वह यह न जान सका कि मैं कहाँ हूँ। वह इधर-उधर देखने लगा। उसे वहाँ न तो कोई उसकी जान पहचान का व्यक्ति ही दिखाई

दिया और न कोई उसकी जाति का ही। वह ज़रा घबड़ाया और दोनों के मुख की ओर देखने लगा। तानाजी उसके मन की स्थिति को ताड़ गया और कुछ जानने की इच्छा से उसी की बोली में कहने लगा—"आपको यह कैसे पता लगा कि हम खास उसी जगह पर आवेंगे ? आप हमें पकड़ने के लिए ही उतर रहे थे न ? पर हम भी कोई कच्चे आदमी नहीं हैं। हम आए थे यह देखने को कि किले पर चढ़ने के लिए कोई सीधा, सरल रास्ता है या नहीं। हम अपने उद्योग में लगने वाले ही थे कि अचानक आपको नीचे उतरते देखा। हमको अपनी रक्षा करना तो आवश्यक था ही। हम क्या करते ! हमने आपको तीर मार कर नीचे गिराने का यत्न किया।"

"क्या आप गढ़ पर अधिकार करने आए थे ?" जगतसिंह हर्षित होकर बोला, "यदि ऐसा हो तो मैं तुम्हें सहायता दे सकता था क्योंकि गढ़ पर छिप कर चढ़ने के लिए या उतरने के लिए वही एक रास्ता है। यदि मैं तुम्हारा अभिप्राय पहले ही जान सकता तो बड़ा अच्छा होता और मुझे भी लाभ होता। आज तुमने मुझे घायल करके मेरा बड़ा नुकसान किया है। एक राजपूत स्त्री का पातिव्रत्य भंग होने वाला है, उसे बचाने के लिए ही मैं प्रयत्न कर रहा था। उसे छुड़ाकर नीचे उतारने का रास्ता देखने के लिए मैं रस्सी नीचे छोड़े जा रहा था। मेरे सौभाग्य से ऊपर की चौकी पर गश्त देने वाला मल्हार भी मुझसे सहमत था और उसने मुझे सहायता देने का वचन दिया है। बड़े प्रयत्न से मैंने एक रस्सी अपने पास ला रक्खी थी जिसे मैंने उसको दे दिया था कि कोई सदेह न कर सके। मुझसे इशारा पाते ही उसने रस्सी फेंक दी जिसकी सहायता से मैंने नीचे उतरना प्रारम्भ किया इतने में आपके तीर ने मुझे घायल किया। अपने

सौभाग्य से ही इस समय में जीता हूँ नहीं तो इतनी ऊँचाई से गिरने के बाद मेरे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जाते। परन्तु अब भी हर्ष करने का कोई कारण नहीं है।"

"क्या भला? आप क्या कहते हैं?—आनन्द मनाने का कोई कारण नहीं! आप जीते जी बच गए यह क्या कोई बुरी बात हुई?" तानाजी बड़े आश्चर्य से बोला।

"अब और क्या बुरी बात होने को बाकी रही है? सब कुछ बुराई होती। उस सती को मैंने उस दुष्ट उदयभानु से मुक्त करने की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु अब सब प्रयत्न विफल होगए। वह कामान्ध अब नवमी की रात को उससे अवश्य जबरदस्ती निकाह कर लेगा। औरंगाबाद से उसने एक क़ाज़ी को बुला रक्खा है। आज कल हिन्दुओं का दुर्भाग्य ही दुर्भाग्य दिखाई देता है। जिस काम को हाथ में लेते हैं वह कभी सफल होता ही नहीं। भगवान शंकर, न मालूम आपके मन में क्या है? क्या हिन्दुओं का सिर ऊँचा न होगा? क्या हमारी माता, भार्या आदि, इन सब की लाँछना ही हमको देखनी होगी? क्या उनका सतीत्व-भंग ही हम देखेंगे? क्या उदयभानु जैसे अधमाधम, धर्मभ्रष्ट दुरात्माओं की सदा जय ही होगी? अच्छा भगवन्, जैसी आपकी इच्छा!" इतना कह कर उसने एक लम्बी साँस ली।

जगतसिंह की बातें सुन कर तानाजी तथा रायबा को बड़ा कष्ट हुआ। उदयभानु का सत्यानाश करने वाला यह सिपाही कौन है? किस वनिता का दुख दूर करने के लिए यह प्रयत्न कर रहा है? इन दोनों ने पूरा पूरा वृत्तान्त सुनाने के लिए उससे प्रार्थना की। इस पर उसने राजकुमारी का सब हाल कह सुनाया और फिर इस प्रकार कहने लगा—

"बादशाह की अनुकम्पा से वह आज तक इस अत्यन्त घृणित प्रसंग से किसी प्रकार बची भी रही, नहीं तो अब तक उस दुष्ट की कामाग्नि में उसकी आहुति कभी की पड़ गई होती या वह आत्महत्या करके जान दे डालती। परन्तु औरंगजेब की इच्छा से उसे माघ वदि नवमी तक का अवसर मिल गया। मेरी स्त्री उसकी प्यारी सखी है। जब कमल-कुमारी सती होने के लिए निकली थी तब वह भी उसके साथ वन में गई थी। जब यह दुष्ट कमलकुमारी को पकड़ कर ले गया तब उसने मेरी पत्नी से वापिस चली जाने को कहा परन्तु वह कमलकुमारी की सेवा करने के बहाने उसके साथ रह गई। मुझे यह खबर लगते ही मैं तुरन्त उनके पीछे पीछे दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पहुँचकर मैंने उदयभानु के घर का पता लगाया। किस प्रकार अपनी स्त्री या कमलकुमारी को इशारा करूँ, किस प्रकार उनके पास संदेशा भेजूं—इस उधेड़बुन में मैं उदयभानु के बाड़े के पास पागल की भाँति घूम रहा था। मैंने उदयभानु को कमलकुमारी तथा उसके पिता को बादशाह के महल की तरफ ले जाते हुए देखा। मेरी स्त्री अपनी सखी को धीरज देने के लिए दरवाज़े तक आई। उसने भी मुझे देख लिया और ठहरने के लिए संकेत किया तथा ऊपर जाकर उसने झरोखे में से परदे के भीतर से एक चिट्ठी फेंक दी। चिट्ठी में उसने मुझे दूसरे दिन सुबह के समय आने के लिए लिखा था। उसके अनुसार अगले दिन जब मैं भिखारी के भेष में वहाँ पहुँचा तो उसने मुझे एक रोटी दी। उस रोटी के भीतर एक चिट्ठी निकली जिसमे सब हाल लिखा था। उसमे लिखा था—"बादशाह ने हमे तीन महीने की अवधि दी है; इसलिए हमारी मुक्ति का प्रयत्न यदि कर सकते हो, तो करो। नहीं तो कुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए कुछ भला-बुरा हमही को करना पड़ेगा। नहीं कह सकती कि चट्टान से कूद पड़

कर हम अपनी जान दे दें या सताप में भर कर ही प्राण खो दें" यह चिट्ठी पढकर मुझे बडा क्रोध आया और मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि यदि मै राजपूत का बच्चा हूँ तो इस अवधि के भीतर उस दुष्ट का नाश कर इन दोनों की रक्षा करूँगा। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये मैंने उदयभानु की भारी सेना मे प्रवेश किया। मैं कौन हूँ, क्या हूँ, इसके बारे मे किसी को कुछ पता नहीं लगने दिया। रास्ते में एक दिन हम नर्मदा नदी के तट पर ठहरे थे। वहाँ सब लोग नदी में तैरने के लिये गए। उनमें से एक विशालदेव नाम का राजपूत डूबने लगा। उसके साथी देखते रहे, किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उसको बचाए। तब मैंने कूद कर उसे जीते जी निकाला। उसी समय मे यह विशालदेव मेरा परम स्नेही मित्र हो गया है। उसने मुझे सिपाही बनवा दिया और खास चौकीदारों में मेरी भरती करवा दी। तब मे किसी युक्ति से मैं उन्हे धीरज दिलाता आ रहा हूँ और वे भी किसी तरह मेरे आश्वासन पर जी रही हैं। नहीं तो, अब तक उन्होंने आत्महत्या कर ली होती। किले में ऊपर जो सेना है उसमें एका नहीं है। उदयभानु के सख्ती करने को भी वह कुछ नहीं मानती। जो पुराने लोग हैं व इसकी ऐंठ देख कर इससे द्वेष करते हैं, जो लोग नये इसके साथ आए हैं वे भी इसका द्वेष करते हैं क्योकि यह हीनकुलोत्पन्न होकर शेखी से चलता है और असली राजपूतो मे द्वेष रखता है। बहुत से लोग इसमे इस कारण से भी नाराज हैं कि यह एक सती पर अत्याचार कर रहा है। इन सब कारणों से कमलकुमारी को मुक्त करके मेरे भाग आने पर भी मेरा पीछा किए जाने की सम्भावना बहुत कम थी। मैं कौन हूँ, यहाँ आने का मेरा उद्देश्य क्या है, इन बातों को केवल विशालदेव ही जानता है। वह मुझे पूर्ण सहायता दे रहा है। परन्तु अब मैं इस अवस्था

मे पड़ा हूँ, अब मेरे हाथ से क्या हो सकेगा! भगवान शंकर, आप की ही शरण है।'

जगतसिंह की यह कथा तानाजी और रायजी एकाचित्त होकर सुन रहे थे। कमलकुमारी अपने पति की पादुकाएँ लेकर सती होने जा रही थी और उदयभानु उसे खींच कर ले गया, यह वृत्तान्त सुन कर तानाजी की भुजाएँ फड़कने लगीं, उसके नेत्र लाल हो गये, चेहरा तमतमा गया और वह दाँत पीसने लगा। कमर मे लटकती हुई तलवार के ऊपर उसका हाथ अनायास ही जा पड़ा।

यही व्यवस्था रायजी की भी हुई। उसकी भ्रुकुटी ऊपर चढ़ी हुई थी, दृष्टि मे क्रूरता आ गई, मुट्ठियाँ तन गईं, नथने फूल उठे, और वह अपने अधर को दाँतो से चबाने लगा। वह आवेश के साथ उठ खड़ा हुआ मानों उदयभानु को मार कर उस साध्वी की मुक्ति के लिए वह अभी गढ़ पर कूद पड़ने को तैयार हो। तानाजी ने जगतसिंह का हाथ पकड़ा और कहा, "जगतसिंह, हमने आपको बाधा अवश्य पहुँचाई है परन्तु मेरे लोगो की पहली पलटन यहाँ परसो, अर्थात् अष्टमी की रात को या रात बीतने के बाद सुबह, वहीं नियत स्थान पर आवेगी। दूसरा पलटन दूसरे दिन प्रातःकाल आने वाली है। वह आ जाएगी तब तो बहुत ही अच्छा होगा। यदि न आई तो भी कोई हानि नहीं। पहली पलटन मे जितने आदमी आएँगे—पाँच, पचीस या पचास—उतने ही साथ मे लेकर मैं गढ़ के ऊपर कूद पड़ूँगा। नवमी की मध्य-रात्रि बीतने के पहले ही, उदयभानु के उससे निकाह करने के पूर्व ही, मैं महाराज की दी हुई इसी तलवार के साथ उदयभानु का निकाह करा दूँगा। मैं अधिक नहीं बोला करता हूँ। सती के पुण्य से इन पचास लोगों से ही मै जय प्राप्त कर सकूँगा।"

इतना कह कर तानाजी चुप हो रहा। उसके मन में तरह तरह के विचार आ रहे थे। कुछ देर तक एक अक्षर भी वह न बोला। उसका चेहरा देख कर उससे बोलने का किसी दूसर को भी साहस न हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद



दिल्ली का पत्र

जैसे जैसे माघ वदि नवमी का दिन समीप आने लगा वैसे ही वैसे उदयभानु का मन भी अत्यन्त अस्थिर रहने लगा। उसे कोई काम भी नहीं था। जसवन्तसिंह और शाहजादा मुअज्ज़म के विषय में उसे जो कुछ लिखना था सो वादशाह को लिख कर भेज चुका था। किले पर सब प्रकार की व्यवस्था हो गई थी। वह मन में सोचता था कि जसवन्तसिंह के स्थान पर अपना तवादला होने तथा दक्खिन के सूबेदार बनने के बाद किसी बात की कमी नहीं रहेगी और फिर वर्ष-आधे-वर्ष में उस शिवाजी को भी पकड़ कर वादशाह का आधीन कर दिया जाएगा। एक बार ऐसा कर दिखाया जाएगा कि वादशाह भी खुश हो जाएगा। वादशाह के खुश हो जाने के बाद फिर एक बार उससे उदयपुर के ऊपर आक्रमण करने का परवाना लेकर, जिन लोगों ने हरदम अपमान किया है उनको अच्छी तरह ठीक कर देंगे। अब तो माघ वदि नवमी का दिन भी समीप आ गया था। उस रोज़ आधी रात को कमलकुमारी के साथ निकाह कर के उसके पिता को, महाराज राजसिंह को, तथा अन्य जो जो राजपूत उसे छोटा समझते थे उनको पत्र लिखने का वह इरादा कर रहा था जिससे वे लोग

समझ जाएँ कि उसकी कितनी प्रतिष्ठा है। जैसे जैसे वह दिन समीप आने लगा वैसे वैसे वह कमलकुमारी के पास अधिकाधिक जाने लगा और उसे, अब इतने दिन रहे, अब इतने दिन बाकी रहे, आदि बातें कह कर चिढाने लगा। पर देवलदेवी कमलकुमारी को बार बार आश्वासन देती रहती थी। वह बार बार कहती कि, "इस तरह खेद करने से काम न चलेगा, बल न रहने से इष्ट कार्य में सिद्धि कैसे मिलेगी? क्योंकि किसी दिन हमको रस्सी पकड कर गढ पर से उतरना ही पडेगा।" वह हमेशा कहा करती कि आज मेरे पति, जगतसिंह, ने अमुक प्रकार कहा है, आज कोई सरदार उन्हें सहायता देने के लिए तैयार हुआ है, आदि। इस प्रकार वह उसका उत्साह बढाती रहती थी और इसमें उसको सफलता भी मिलती थी। जगतसिंह ने देवल-देवी को एक चिट्ठी भेजी जिसे पढकर कमलकुमारी को हर्ष हुआ। उस चिट्ठी में लिखा था—"माघ बदि पञ्चमी के दिन, मध्यरात्रि के समय में स्वयं गढ के तट पर से रस्सी फेंक कर एक बार परीक्षा करूँगा और यदि अवसर मिला तो उस समय एक चिट्ठी भी फेंक दूँगा जिसमें आगे की तैयारी का हाल लिखा होगा। महल की चौकी पर जो सिपाही हैं वे सब मुझसे मिले हुए हैं, इसीलिए तुम्हारी चिट्ठी मुझको और मेरी चिट्ठी तुमको मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। परन्तु चिट्ठी नियत समय पर ही फेंकना होगी, नहीं तो सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा।"

कमलकुमारी तथा देवलदेवी का दृढ विश्वास था कि जगतसिंह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है और जो काम वह हाथ में लेता है उसे कर ही डालता है, कभी चूकता नहीं। इसलिए वे दोनों पत्र पाकर समझने लगीं कि हम जाग छूटे हुए से ही हैं। कमलकुमारी का मुख आज आनन्द से खिल गया था जिसे देख

कर उदयभानु को विस्मय हुआ, क्योंकि उसका इतना प्रफुल्ल मुख उसने कितने ही दिनों में नहीं देखा था। उसने सोचा कि 'अब केवल दो-तीन दिन बचे हैं जिनमें मुक्ति की सम्भावना बहुत कम है, अतः अब खेद करने, रोने-धोने से कोई लाभ नहीं'— ऐसा ख्याल करके शायद कमलकुमारी आनन्द-पूर्वक विवाह करने और दुःख, चिन्ता आदि को छोड़ देने को तैयार हो गई है। इसी प्रकार उदयभानु अपने मन में विचार कर रहा था तथा हवा के किले बाँध रहा था। परन्तु कमलकुमारी से उसने यह न कहा कि 'तुझे आनन्दित देख कर मुझे बहुत संतोष होता है।" उसे डर था कि वह उसके बात करने से नाराज़ न होजाए। अन्त में, अपने मन में अनेक प्रकार के विचार करता हुआ वह वहाँ से चल दिया। उस दिन वह बड़े हर्ष में था और अपने मन के महल की ऊँची ऊँची मीनारें बनाने में मग्न हो रहा था।

इधर, पञ्चमी के दूसरे दिन की कार्रवाई के सम्बन्ध में जगतसिंह की चिट्ठी पाने की आशा से देवलदेवी नियत स्थान पर पहुँची, परन्तु वहाँ चिट्ठी न देख कर वह बहुत घबराई। आज यदि तैयारी नहीं हो सकी तो कल होगी, इस विषय की सूचना के लिए तो चिट्ठी होनी ही चाहिए थी;—वह भी वहाँ नहीं थी। देवलदेवी के हृदय में अमंगल का भय हुआ और वह चिन्ताग्रस्त हो गई। नियत स्थान पर उसने बड़े गौर से बारबार देखा परन्तु कहीं भी कुछ नहीं मिला। हज़ारों विचार उसके मन में आए। वह डर रही थी कि कोई खराबी तो नहीं हुई। हाथ छूट जाने से कहीं जगतसिंह रस्सी पर से नीचे तो नहीं गिर पड़े। शायद उदयभानु को सब बातों का पता लग गया हो और उसने उन्हें कारागार में डाल दिया हो। देवलदेवी की समझ में कुछ

नहीं आया। परन्तु उसने सोचा कि यह बात कमलकुमारी से कहना ठीक नहीं है।

परन्तु बहुत बार ऐसा होता है कि मुख की आकृति से ही सब कुछ समझ में आ जाता है। कमलकुमारी भी देवलदेवी के समान ही आशायुक्त थी, किन्तु जब उसने देवलदेवी का चेहरा देखा तो वह जान गई कि कुछ न कुछ अनिष्ट की बात जरूर है। उसने देवलदेवी से समाचार पूछा और देवलदेवी ने यह कह कर टाल दिया कि 'कुछ समझ में नहीं आता, क्या समाचार है।' किसी किसी समय कुछ न कुछ समझना ही आवश्यक होता है और उस समय यदि कह दिया जाए कि 'समझ में नहीं आया' तो उसका परिणाम ठीक नहीं होता। इसकी अपेक्षा तो अनिष्ट की बात कह देना ही अधिक अच्छा है, क्योंकि उसमें मनुष्य एकदम निराश हो चुपचाप होकर तो बैठ रहता है। कुछ समझ में नहीं आने से चिन्ता, खेद लगे रहते हैं। ठीक वैसी ही अवस्था इस समय हमारी नायिका और उपनायिका की थी।

उस दिन घड़ी घड़ी में उन दोनों का मन स्थिति कैसी होती थी, यह कहना कठिन है। देवलदेवी अपने सौभाग्यरवि के अस्त होने की आशंका से व्यथित हो रही थी। उसके मन में कल्पनाएँ उठ रही थीं कि उसका पति रस्सी पर से, रस्सी हाथ से छूट जाने से, या अन्य किसी प्रकार तट पर से अथवा चट्टान पर से शायद गिर पड़ा है। सिंहगढ़ की चट्टानें बड़ी भयानक हैं। नीचे गिरने वाले की हड्डियों तक का मिलना कठिन हो जाता है। पति की ऐसी अवस्था की कल्पना कर उसे रोमाञ्च हो आया। जिस आशा से वह कमलकुमारी को धीरज देती थी वह आशा अब न रही। कमलकुमारी को धीरज देने के बदले में अब कमल कुमारी के लिए उसे धीरज दिलाने की अवस्था प्राप्त होगई। पति

स्त्रियों का जीवन-सर्वस्व होता है, उसी जीवन-धन से अब उसे वञ्चित होना पड़ेगा—यह विचार ही देवलदेवी के लिए बड़ा भयंकर था। जिसके आधार पर स्त्रियाँ जगत् में दुःख तथा क्लेश को हँसी-हँसी सहन कर लेती है उसका विनाश हो जाने के बाद फिर बच ही क्या रहा ? जिसके परलोकगामी होने से पहले वे स्वयं मरने की इच्छा रखती है वह मृत हो गया—यह विचार हृदय को सहसा कम्पित कर देता है। देवलदेवी की इस समय ऐसी ही अवस्था थी। उसका कलेजा टूक टूक हो रहा था। परन्तु वह बड़ी धीर स्त्री थी; उसने सोचा कि यदि मैं ही निराशा दिखलाऊँगी तो कमलकुमारी तत्काल प्राणत्याग कर देगी। इस विचार से उसने इच्छा की कि अपने दुःख को प्रकट न होने दे—अब उन दोनो के प्राणत्याग करने मे ही कौन सी हानि थी! पति की मृत्यु के अनन्तर उन्हे छुड़ाने वाला कोई नही था। प्राणत्याग से जो मुक्ति मिलेगी वही अब एकमात्र मुक्ति थी ? इस शरीर मे से जब प्राण ही निकल गए तो इसकी क्या अवहेलना होगी, इसकी चिन्ता ही क्या ? ऐसा सोच कर देवलदेवी मन मे तर्क करने लगी कि किस रीति से प्राणत्याग करके छुटकारा पाया जाए।

परन्तु अपने पति के सम्बन्ध मे उसे निश्चय रूप से तो कोई खबर अभी मिली नही थी। इस कारण उसे यह भी भय था कि यदि हम दोनो ने प्राणत्याग कर दिया और उधर आज रात या कल रात को कोई चिठ्ठी आ गई तो मेरे पति को कितनी निराशा होगी। तीन महीने तक उन्होने जो नाना प्रकार के क्लेश सहन किए और दोनो को छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया वह सब केवल एक दो दिन की अधीरता और ज़रा-सी देर की मूर्खता से निष्फल हो जाएगा। इससे उचित यही है कि आत्महत्या करने

के सब साधन तैयार रख कर नवमी के सायंकाल तक प्रतीक्षा की जाए और यदि उस समय तक भी कोई खबर न पहुँचे तो देह त्याग कर दिया जाए। यही विचार देवलदेवी ने निश्चित किया और उससे उसकी आत्मा को सतोष भी हुआ।

इस समय उसके मन की अवस्था तूफ़ान में पड़े हुए जहाज के समान थी। कभी जहाज किसी प्रचंड लहर के ऊपर आकर उसके शिखर तक पहुँच जाता और लहर के कम होते ही नीचे आकर फिर दूसरी लहर में पड़ जाता है। वैसे ही उसका मन भी उथल पुथल हो रहा था। किसी आशा का आधार पाते ही उसे धीरज आ जाता, फिर निराशा की पराकाष्ठा होने पर वह धीरज नष्ट हो जाता और वह हताश हो जाता। वह स्वयं न जानती थी कि उसके मन की स्थिति किस ओर झुकेगी। परन्तु अन्त में विकार के ऊपर विचार की जय हुई और उसने माघ वदि नवमी के सूर्यास्त तक राह देखने तथा उस समय तक मुक्ति का कोई चिह्न न मिलने पर, आत्महत्या करके उदयभानु के लिए केवल दोनों का प्रेत छोड़ने का निश्चय किया।

उदयभानु, कमलकुमारी तथा देवलदेवी का इस प्रकार पृथक् पृथक् मन की अवस्था थी ही कि माघ बदि नवमी का दिन भी आगया। पञ्चमी के दिन रात को गढ़ का एक सिपाही गायब हो गया, यह खबर उदयभानु को अगले रोज़ मिल गई। परन्तु इस सूचना को तुच्छ समझ कर उसके ऊपर कोई विशेष ध्यान न दिया। उसने कहा, "वह सिपाही तट पर से उतरते समय पैर फिसल जाने के कारण गिर पड़ा होगा या नशा खाकर बेहोश पड़ा होगा। उसे अच्छी तरह तलाश करो। तुम लोग क्यों गाफ़िल रहे? अगर बाहर से कोई अधिक मनुष्य

आवें तो मुझे खबर दे देना।" उदयभानु को यही खबर चार पाँच रोज़ पहले मिली होती तो वह कदाचित् इ लापरवाही न करता।

परन्तु उसके मन की वर्तमान अवस्था में एक सिपाहं लापता हो जाना कोई विशेष चिन्ता की बात न थी। इस स उसका तमाम ध्यान कमलकुमारी की ओर लगा हुआ इसीलिए उसने इस बात की कोई पर्वाह नहीं की। वह समय औरंगाबाद से बुलाए हुए काजी के साथ बैठ कर करता तथा किसी समय इन कल्पनाओं में रहता कि वि हो जाने के बाद कमलकुमारी मेरे साथ कैसा बर्ताव कं वास्तव में, उदयभानु का कमलकुमारी के बिना कोई काम अटका हुआ था। मुसलमान-धर्म के साथ उसने मुसल रीति-रिवाज भी स्वीकार कर लिया था जिसके कारण उ जनानखाना उसके साथ ही रहता था। परन्तु कमलकुमा साथ विवाह कर लेने मे कुछ प्रतिष्ठा बढ़ जाने का उद्देश्य वह देखता था कि राजसिंह तथा राजसिंह के साथी स सब बड़ी ऐंठ से रहते है और उसे तुच्छ समझ उसको कन्या नहीं मिलने देते। इस समय एक बड़ी प्रतिष्ठा वाले कुलीन सरदार की कन्या से बलपूर्वक विवाह करके वह इन दारों को शरमिंदा करना चाहता था। इसीलिए वह कमलकु को पकड़ कर लाया और उसके विषय मे अभिलाषा प्रकट परन्तु यहाँ एक ऐसी बात होगई जिसकी उसे कभी आ थी—बादशाह ने एक शर्त लगा दी जिससे कमलकुमार प्राप्ति मे एक और विघ्न उपस्थित होगया।

मनुष्य का यह एक स्वभाव है कि जिस वस्तु के प्राप्त में विघ्न होते है, या जिसके न मिल सकने के कई कारण हं

वह उसी के पीछे अधिकतर दौड़ता है। उदयभानु भी इसी मानव स्वभाव के आधीन हो रहा था। कमलकुमारी उसे दुर्लभ मालूम होती थी, उसकी अभिलाषा का यही कारण था। परन्तु इधर तीन महीने तक उसके साथ रहने के कारण उसके हृदय में अभिलाषा से बढ़ कर एक और उदात्त भावना भी अंकुरित होगई थी। यह भावना थी—प्रेम। उस समय वह इसी भावना से उसको प्राप्त करने की इच्छा करता था। शुद्धता बहुत दुर्लभ है। अशुद्ध, अपवित्र मनुष्य भी शुद्धता की, पवित्रता की, इच्छा रखता है। जो मनुष्य स्वयं अपवित्र है वह भी दूसरे पवित्र मनुष्य की प्राप्ति, सहवास, प्रेम की इच्छा करता है। उदयभानु का भाव कुछ कुछ ऐसा ही हो चला था। केवल ऐंठ के ही कारण नहीं, बल्कि प्रेम से भी वह कमलकुमारी की इच्छा करता था।

वह माघ वदि नवमी का दिन था। उदयभानु आनन्द से फूला न समाता था। जो इच्छित फल उससे दूर दूर भाग रहा था वह अब थोड़ी ही देर में उसका होने वाला था, इस विचार से उसका चेहरा खिल रहा था। यहाँ से छुटकारा पाने की आशा से कमलकुमारी यद्यपि अभी तक उससे दूर रही थी, तथापि एक बार निराश हो जाने पर, विवाह हो जाने के बाद, अपने भाग्य पर सताप कर वह प्रेमभाव से वर्ताव करने लगेगी और थोड़े ही दिनों में उसे अपना तन मन और धन सब अर्पण कर देगी इसकी उदयभानु को पूर्ण आशा थी। वह अपनी इसी आशा में मग्न था कि उसे सूचना मिली कि दिल्ली से कोई सवार थैली लेकर आया है। थैली लेकर आने का अभिप्राय यह था कि बादशाह ने कोई पत्र भेजा है। यह पत्र उसके पत्र का उत्तर नहीं था। यद्यपि उसका भेजा हुआ सिपाही बड़ी शीघ्रता से गया

राजपूत रक्त था, जिससे निसर्गत: वह बोल उठा—"भगवान् शंकर, तेरी महिमा अगाध है," मानों वह भूल गया था कि मैं मुसलमान हो चुका हूँ। स्वर्गसुख की प्राप्ति होने के लिए अब थोड़ी ही देर थी। उसने अपने भावी सुख की कल्पना में मग्न होकर सोचा कि एक बार कमलकुमारी के महल में हो आऊँ। वह उस ओर को चल दिया।

जो समय उदयभानु के लिए बड़े सुख-समारोह का था, वही कमलकुमारी के लिए दुःख की पराकाष्ठा का समय था। जैसी अवस्था किसी की उसे वध्यस्थान पर ले जाकर शिक्षा सुनाने के बाद होती है वैसी ही अवस्था इस समय कमलकुमारी की थी। हर घड़ी उसको ध्यान रहता था कि मेरी आयु का एक एक क्षण कम हो रहा है—मृत्यु-समय नज़दीक आ रहा है। पहले जगतसिंह से कुछ सहायता मिलने की आशा थी, पर अब वह भी समूल नष्ट हो गई। दिन निकल आने के बाद तो आशा बिलकुल ही नहीं थी। तीन दिन के इस बीच में जगतसिंह के पास से कोई संदेश नहीं मिला था। जिससे देवलदेवी का संदेह भी पक्का हो चला था कि वह जीता-जागता नहीं है। वे दोनों एक दूसरी की तरफ़ देखती हुई अपने अपने शोक में मग्न थीं, और एक दूसरी की ओर देखकर ही वे एक दूसरी का समाधान कर रही थीं। मुँह से शब्द निकालने की सामर्थ्य अब उनमें नहीं थी।

इस अवसर पर उदयभानु के आने का समाचार उन्हें मिला। सुनते ही उनके होश उड़ गए। कमलकुमारी भय के मारे घबड़ा गई। वह बिलकुल सफेद पड़ गई, मानो उसके शरीर का रक्त ही सूख गया हो। वह काँपने लगी। यह देखते ही देवलदेवी का साहस बढ़ गया। कोई कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका साहस संकट-काल में ही विशेष उद्दीप्त होता है। इस समय तक वह

अपने पति के लिए शोक कर रही थी परन्तु अब यह देख कर कि यह दुष्ट उसका तथा कमलकुमारी का अपमान करने के लिए आ पहुँचा है वह उत्तेजित हो उठी, मानों कमलकुमारी का और उसका रक्त इकट्ठा होकर उस अकेली के ही शरीर में उबलने लगा हो। वह लाल-लाल हो गई। उसके विशाल नेत्र लाल होकर मानों आग के अंगारे बरसाने लगे।

उदयभानु परदा हटाकर भीतर प्रवेश करना चाहता ही था कि देवलदेवी क्रोध भरे शब्दों से उस पर टूट पड़ी—"उदयभानु, हिंस्र व्याघ्र हरिणी के ऊपर झपटकर उसे मारने से पूर्व अपने क्रूर नेत्रों से उसको देखता है और जब हरिणी डरती है तो वह आनन्दित होता है। क्या तू भी उसी व्याघ्र के समान है? तुझे अपने को राजपूत मर्द कहते हुए शर्म नहीं आती? तमाम प्रयत्न कर चुकने पर तुझे जीते जी तेरा शिकार नहीं मिलगा। मृत शरीर की विडम्बना करनी हो तो तू कर सकता है। फिर, बारबार तेरे यहाँ आने का क्या कारण है? "

देवलदेवी का यह अभिनय देख कर उदयभानु तत्काल स्तम्भित हो गया। वह एक शब्द भी न बोल सका। परन्तु उसका भाषण सुन कर उसे एक संदेह हुआ। यदि देवलदेवी की सलाह से कमलकुमारी ने आत्महत्या कर ली तो बड़ी मुश्किल होगी। इसमें, उचित यह होगा कि कुछ कठोरता दिखाकर इन दोनों को एक दूसरी से अलग कर दिया जाए। परन्तु ऐसा करने का उपाय उसकी समझ में न आया। अन्त में उसने अपने खानखाने की चार हब्शी दासियों द्वारा देवलदेवी को चुपचाप उठवा कर यहाँ अन्यत्र टलवा देने का निश्चय किया तथा बाद में उसने ऐसा ही किया। उसे डर था कि वह आत्महत्या न कर ले। कमलकुमारी को भी उसने अपने महल में ही रखवाया और

उस पर दो हब्शी दासियों का पहरा करवा दिया। दुष्टों को जब अपने हेतु की सिद्धि में शंका होती है तो उन्हे तरह तरह की युक्तियाँ सूझा करती हैं और वे तुरन्त उन युक्तियो को अमल मे ले आते है।

बारहवाँ परिच्छेद

माघ वदि नवमी

उधर तो उदयभानु इस प्रकार अपने कार्य में लगा हुआ था और इधर तानाजी रायजी के घर में बैठा हुआ चिन्ता कर रहा था। वह किसी की प्रतीक्षा में था और बार बार पास बैठे हुए जगतसिंह से कहता, "अभी तक सन्देश क्यों नहीं आया ?" जगतसिंह भी चिन्तामग्न था। उसके पास से कोई समाचार न पाकर उसकी स्त्री न मालूम किस विचार में होगी। जगतसिंह को ज़रा भी संदेह न था कि दोनों स्त्रियाँ छुटकारा पाने के विषय में निराश होकर अपनी जान दे डालेंगी। रात के बारह बजे तक भी वे जीती रह सकेंगी या नहीं, इसके सम्बन्ध में भी उसे शंका थी। तथापि वह निराशा की बातें नहीं करता था, क्योंकि वह भली भाँति जानता था कि उससे भी अधिक तानाजी कमला-कुमारी को छुड़ाने के लिए उत्कण्ठित है। तानाजी कहता था कि, "यदि मेरे लोग न भी आए तो मैं स्वयं तुम्हें और रायजी को साथ लेकर उस साध्वी को छुड़ा लाऊँगा। यदि वह दुष्ट रोकेगा तो वहाँ के राजपूतों को भड़का कर उसे ठीक करा देंगे। और यदि ऐसा ही कोई अवसर आ उपस्थित हुआ तो स्त्रियों के योग्य मृत्यु तो उनकी सहायक हो ही जाएगी। परन्तु किसी प्रकार भी उनकी विडम्बना कदापि न होने देंगे।" निराशा की बातें कहना

वह अनुचित समझता था और इसीलिए जगतसिंह भी चुपचाप था। तानाजी उसे बराबर उत्साह दिलाता था। वह जो काम हाथ में लेता उसे अवश्य पूरा करता। किन्तु तानाजी जानता था कि अकेले ऊपर चढ़ने में साक्षात् मृत्यु को आह्वान करना ही है। कुछ लोगों की एक टुकड़ी पहले ही रोज सुबह आने वाली थी; वह आज तक नहीं आई और न उसके सम्बन्ध में कुछ समाचार ही मिला। इसलिए उसकी खोज के लिए उसने रायजी को भेजा था। परन्तु वह भी नहीं लौटा। इससे उसकी चिन्ता और अधिक बढ़ गई। उसके मन में नाना प्रकार के विचार आ रहे थे, लेकिन किसी से उसे शान्ति नहीं मिलती थी। वह रायजी का पता लगाने के लिए जाना चाहता था परन्तु रायजी उससे कह गया था कि तुम्हारा घर से बाहर निकलना ठीक नहीं है। जगतसिंह ने भी यही राय दी। तानाजी के लिए तरह तरह के संदेहों में पड़कर तर्क-वितर्क करना ही रह गया। केवल गढ़ लेने का ही काम होता तो वह आज नहीं तो कल अवश्य पूरा हो जाता। गढ़ लेने की उसने प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा को पूरी किए बिना वह वापिस जा नहीं सकता था। परन्तु अब तो आज ही गढ़ पर अधिकार करने के लिए एक विशेष हेतु पैदा हो गया था। अतः इसका उपाय किस प्रकार हो, इसी चिन्ता से तानाजी इस समय व्यथित हो रहा था। उसे इस विचार से बड़ा कष्ट हो रहा था कि उसने एक दूसरे व्यक्ति के कार्य में भी बाधा डाली जो कि एक साध्वी की रक्षा के लिए अग्रसर हो रहा था। एक—दो—तीन घण्टे बीत गए; परन्तु रायजी का या किसी दूसरे का अभी तक पता नहीं। ताना जी को निराशा हुई। वह अब सोच रहा था कि अकेले ही जाकर नियत स्थानों पर कमन्द लगा कर ऊपर चढ़ जाएँ, और पहरा देने वाले सिपाहियों को ठिकाने लगा, कमलकुमारी को रात में छुड़ा कर वहीं

के राजपूत सिपाहियों के अधीन करदें और उनसे प्रार्थना-पूर्वक कहदें कि 'भाइयों, यह तुम्हारी बहन है, इसके पातिव्रत्य की रक्षा करो।' यह निश्चय करना मानों मरने का ही निश्चय करना था। किन्तु प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए यह करना आवश्यक था। अपने मन की वेदना को वही जानता था। जो पुरुष आत्माभिमानी होते हे वे अपने वचन की रक्षा करन में तत्पर रहते हैं। जब वे देखते हे कि प्रतिज्ञा का भग हो रहा है तो मृत्यु की इच्छा करते हैं। वे जब किसी कार्य को उठाते हैं तो उस पूरा करन के लिए प्राण तक दे डालते हैं। अपने मन मे निश्चय करके तानाजी ने जगतसिह से कहा—

"जगतसिंह, जिस समय तुम अपनी पत्नी की तथा उस सती की मुक्ति के विचार से निकले थे तो अपना सिर हथेली पर रख कर ही निकले थे। जब मैंने तुमसे कहा था कि मैं माघ वदि नवमी के पहले ही उस सती की मुक्ति करूँगा तो मैंने भी अपनी हथेली पर सिर रख लिया था। अब हमारा कर्तव्य यह है कि अँधेरा होते ही हम दोनों ऊपर चढ जाएँ और जो जो लोग बीच मे पड़ते जाएँ उनको समाप्त करते हुए कमलकुमारी की कोठरी तक पहुँच कर उसकी रक्षा करे। इस प्रयत्न में अपना जो कुछ होवे सो हो जाए। प्रतिज्ञा भग होने की अपेक्षा मृत्यु ज्यादा अच्छी है। हम दोना ही मिलकर अब इस काम को करेंगे।"

"क्यों, दोनों ही क्यों? मैं तीसरा जो हूँ," बाहर से आवाज आई। तानाजी ने जो मुँह उठा कर देखा तो इसी प्रकार एक और व्यक्ति ने भी कहा," और मैं बूढा भी एक चौथा हूँ। कुछ थोड़ा-बहुत तो करूँगा ही। अपनी उम्र के अस्सी वर्ष मैंने नाहक नहीं खोए हैं।"

दो व्यक्तियों के ये शब्द सुनते ही और उन दोनों को देखते ही तानाजी का चेहरा खिल गया। वह उसी दम बूढ़े से बोला, "शेलारमामा, अभी आए हो क्या? रायजी, इतना विलम्ब क्यों हुआ? सुबह से मेरी धीरता लुप्त हो रही थी। सोचता था, न मालूम अब क्या होगा। मामा, सूर्याजी आगया कि नहीं? यदि वह आजाएगा तो दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं होगी। मामाजी, तुम्हें बड़ा परिश्रम हुआ।"

"अजी, परिश्रम क्या है इसमें! येसाजी पचास लोगों की एक टुकड़ी साथ लेकर आया है। उसने मुझे आगे नहीं आने दिया। सूर्याजी बहुत से लोग लेकर पीछे से आरहा है। येसाजी ने कहा है कि सूर्याजी रात के दस बजे से पहले-पहले जरूर आजाएगा। उसकी चिन्ता मत करो। अब आगे की तैयारी करो।"

इसके बाद चारों जन विचार करने बैठे। तानाजी ने अब तक जो कुछ किया था वह सब शेलारमामा को कह सुनाया। बूढ़ा भी चुपचाप सुनने लगा। रायजी ने किस प्रकार उसे गढ़ के चारों तरफ घुमाया, किस प्रकार उसने गढ़ के पश्चिम ओर डोणागिरि नामक चट्टान, जहाँ से जगतसिंह उतरने की कोशिश कर रहा था, देखी तथा जगतसिंह कौन था, क्यों आया था, इत्यादि सब वृत्तान्त उसने कह डाला। शेलारमामा सुनते ही आग-बबूला हो गया और उदयभानु को गालियाँ देने लगा। रायजी और तानाजी ने उसको चुप करने का बहुत कुछ यत्न किया। जब वह जैसे-तैसे चुप हुआ तो रायजी, जगतसिंह और तानाजी ने सलाह कर तय किया कि डोणागिरि ही गढ़ पर चढ़ने के लिए सुगम है, क्योंकि दूसरी अधिक आसान जगह कोई न दिखाई देती थी। तदनन्तर किस प्रकार चढ़ना और

पहले किसका चढना चाहिए, यह चर्चा चली। तब शेलारमामा आगे बढकर बोला, 'पहले मै ही चढ़ूँगा और उस भुभार दरवाजे को खोलूँगा। देखता हूँ कितने राजपूत आते हैं, उन्हें बतलाऊँगा कि बूढे के शरीर मे कितना जोश है।" यह कहते कहते बूढे का चेहरा देखने लायक हो गया। वह फिर बोला, "अरे तानाजी, हँसता क्या है? यह मेरी निरर्थक बकबक नहीं है। जब मै उस कमन्द से सरसर ऊपर चढ जाऊँगा तब देखोगे कि बूढा बूढा नहीं बल्कि बिलकुल जवान है। मेरी भुजाएँ अभी से फुरफुराने लगी हैं।" रायजी की ओर देख कर वह बोला, "अजी वह मरकट लाओ, जरा उस कमन्द को परखन दो। अरे तानाजी, ऐसा क्या बैठा है अब? देखना, मैं ही सब से पहले चढूँगा।"

तानाजी ने मामाजी से धीरे बोलने को कहा। लेकिन बूढे की जुबान कहाँ मानती थी। "मामाजी", तानाजी बोला, "जब चढने का समय आवेगा तब आप ही आगे चढना। पर, इस समय तो आगे का विचार करना है न?" बूढा अब चुप होगया परन्तु उसका शरीर उत्साह से भर रहा था। अन्य बातो की चर्चा के बाद इन लोगो ने येसाजी के पास सन्देश भेजना चाहा कि, "तुम अडतालीस लोगो के साथ सायकाल होते ही डोणागिरि की तरफ चले आओ और शेष दो आदमियों को सूर्याजी की टुकडी को यह सूचना देने के लिए छोड़ दो कि वे दूसरी तरफ से कल्याण दरवाजे के नीचे आकर मौजूद हो जाएँ।" तानाजी, शेलारमामा और जगतसिंह का विश्वास था कि पचास लोगों के साथ गढ पर चढ जाने के बाद कल्याण दरवाजा खोलने मे कोई कठिनता नहीं होगी। और, फिर एक बार दरवाजा खोल देने पर मामला तय हो जाएगा। नीचे

तैयार खड़े हुए सूर्याजी और उसके साथी ऊपर आकर चाहे जो गड़बड़ मचा सकते हैं। सब की अनुमति से यह विचार निश्चित हो जाने के बाद रायजी ने एक विश्वासपात्र नौकर को येसाजी के पास संदेश कहने के लिए भेज दिया। इस समय संध्या हो गई थी। अँधेरा होने लगा था। तानाजी ने तमाम दिन मुँह मे पानी भी नहीं डाला था। तथापि उसे प्यास या भूख की सुध तक नही थी। किसी ने भी उससे इसके बारे में नही पूछा किन्तु जब शेलारमामा ने उससे पूछा तो उसने कह दिया कि, "जब तक मेरे हाथ गढ़ न आवेगा और मै उस साध्वी को मुक्ति न करा लूँगा तब तक मै मुँह मे पानी नही लूँगा।" जगतसिंह ने भी यही जवाब दिया। साथ ही, खान-पान में समय बिताने का वह अवसर नहीं था और इसीलिए इसके ऊपर किसी ने विशेष ध्यान नही दिया।

सूर्यास्त हो गया था और पृथ्वी पर अँधेरा छाने लगा था। शेलारमामा ने सन्दूक मे से वह कमन्द निकाली। इसी कमन्द के सहारे शिवाजी महाराज, तानाजी मालुसरे तथा येसाजी कंक आदि वीरो ने कितने ही गढ़ों पर अधिकार किया था। और इसीलिए उन लोगों ने उसका नाम 'यशवन्ती' रक्खा था। उसे बाहर निकाल उन्होंने उसके अग्रभाग पर सिन्दूर का लेपन किया, मोतियो की जाली चढ़ाई और उसे गढ़ पर चढ़ने के लिए तैयार किया।

थोड़ी ही रात बीती होगी कि येसाजी कंक अपने अड़तालीस लोगो को साथ लेकर नियत स्थान पर उपस्थित हुआ। उसे रास्ता बतलाने के लिए रायजी का मनुष्य गया था। अँधेरी रात थी, भयंकर जंगल था, इर्द-गिर्द झाड़ियाँ लगी हुई थी, जानवरो का बहुत डर था। परन्तु वे शिवाजी महाराज के मावला लोग थे।

वे ऐसे जगलों से भयभीत न होते थे। उन्होंने तुरन्त रास्ता ढूँढा। एक दो जगह कोई कोई लोग गिर पड़े, परन्तु फिर शूरता से उठकर चलने लगे। इस प्रकार छै सात घड़ी रात को डोणा-गिरि चट्टान के दर्रे में वे लोग आकर खड़े हुए। हमारे चारों वीर पहले से ही वहाँ मौजूद थे। इनको देखते ही उन अड़तालीस लोगों को ध्यान न रहा और उन्होंने "हर हर महादेव" की ध्वनि आरम्भ की। तानाजी और रायजी ने उन्हें चुप किया। ऊपर के पहरा देने वाले सिपाही ने पूछा, "क्या झगड़ा है" परन्तु नीचे के पहरे वाले कहार और मछुए लोगों ने उत्तर दे दिया कि—"कोई चिन्ता की बात नहीं है। रायजी के यहाँ के ब्याह का झगड़ा अभी तक चल रहा है। वे लोग भोजन कर चुकने के बाद चिल्ला रहे हैं। बाकी सब ठीक है।" ऊपर के लोग चुप हो गए। वास्तव में, अधिक खोज करने का उन्हें कोई कारण नहीं दिखाई दिया, क्योंकि विवाह का 'झगड़ा' सचमुच अभी तक चल रहा था। दूसरे, पहरे वालों में इतनी चालाकी और सूक्ष्मदर्शिता भी नहीं थी।

इधर तानाजी ने उन लोगों के अविचार पर उन्हें डाँटा और फिर अपनी कमन्द निकाली। उसे प्रणाम कर, "जय अम्बा माता, जय भवानी माता, तुम्हारी ही कृपा चाहिए" प्रार्थि वाक्य कहते हुए उसे शेलार मामा के हाथ में दे दिया और कहा, "मामा! तुम बड़े हो। तुम्हारे ही हाथ से यशवन्ता फेंकी जानी चाहिए। उसे प्रणाम करो और जैसे मैं कहता हूँ उस तरह फेंको।"

शेलारमामा ने उसकी वन्दना की, पश्चात् उसके मस्तक पर जो सिंदूर विराजमान था उसका तिलक अपने और सब लोगों के भाल पर लगाया। माता भवानी का स्मरण कर तानाजी

के बताये हुये स्थान पर उसको छोड़ा। किन्तु कौन जाने, उस समय क्या हुआ—वह ऊपर न जाकर नीचे लौट आई। यह देख शेलारमामा का हृदय संतप्त हुआ क्योंकि कमन्द का लौट आना एक अशुभ चिन्ह था। आज तक कितनी ही बार कितने ही गढ़ों के ऊपर उसे फेंका गया था, किन्तु जैसा आज हुआ वैसा कभी न हुआ था—आज वह वापस आ गई थी। बूढ़ा सोचने लगा कि आज कोई न कोई अमंगल जरूर होगा। तुरन्त वह तानाजी से बोला, "तानाजी, आज शुभ चिन्ह नहीं दिखाई देता। मेरी राय में आज इस झंझट में पड़ना अच्छा नहीं। आज तक यह यशवन्ती कभी भी लौट कर नहीं आई। आज वह पीछे लौट आई है! जान पड़ता है कि यह अशुभ है। कहीं कुछ और ही न हो जाय।"

परन्तु तानाजी ने प्रतिज्ञा की थी कि आज मैं रात के बारह बजने के पहले ही गढ़ पर अधिकार करके साध्वी कमलकुमारी को मुक्त करूँगा। इसी कारण से शेलारमामा के शब्द उसे ठीक न मालूम हुए। बड़े क्रोध से उसने यशवन्ती की शृंखला को खींचा और कहा, "यशवन्ती, आज तक कम से कम सत्ताइस गढ़ तेरे ही बल से मैंने लिए हैं। आज ऐसे मौके पर दगा देगी तो मैं न मानूँगा। फिर एक बार मैं तुझे ऊपर छोड़ता हूँ। ठीक स्थान पर जाकर अच्छी तरह चिपक जाना। अगर नहीं मानोगी तो यहीं तेरे टुकड़े टुकड़े करके चारों तरफ फेंक दूँगा।"

इतना कह कर उसने उस कमन्द को फिर से छोड़ा। ऐसा मालूम होता है कि उसने भी तानाजी का आदेश समझ लिया था। वह झट ऊपर पहुँच कर एक नुकीली चट्टान पर जाकर चिपक गई। तानाजी के शब्द सुन कर दूसरे साथियों का भी उत्साह बढ़ा और जब तानाजी ने ललकार कर कहा,

"आओ, कौन आगे आता है ऊपर चढने के लिये" तो मोहिता घवाए, माहडिक, करू, कवीश्वर, जादव, शेलार, सब आगे चढ आए और रस्सी पकड़ने के लिए दौड़े। किन्तु तानाजी को केवल परीक्षा लेनी थी। प्रथम वही आगे आया और उसने रस्सी को हाथ में ले लिया, क्योंकि वह भली भाँति जानता था कि स्वयं आगे बढ़े बिना किसी को पूरी तरह से उत्साह न होगा। इसके बाद वह शेलार-मामा से बोला, "देखो, जब तक मैं ऊपर न पहुँच जाऊँ तब तक किसी और को ऊपर न चढ़ने देना क्योंकि रस्सी पर अधिक भार होने से कहीं वह टूट न जाय।"

शेलारमामा स्वयं जाने के लिए तैयार था परन्तु तानाजी सब के देखते ही देखते अपने शस्त्र लिए हुए तुरन्त ऊपर जा पहुँचा। अनन्तर जगतसिंह आगे बढा। उसने किसी को आगे नहीं आने दिया। बोला, "मैं पहले जाकर तुम्हें सूचना दूँगा। देखूँगा कि ऊपर मामला क्या है, क्योंकि मैं उस स्थान से परिचित हूँ। तानाजी को मुझ से बहुत सहायता मिलेगी।' इतना कह कर उसने रस्सी पकड़ी। उस बेचारे का जख्म अभी तक अच्छा नहीं हुआ था। परन्तु वह शूर राजपूत था बच्चा था, कच्चे दिल का न था। 'जय, एकलिंग जी की जय' का गर्जना करता हुआ वह ऊपर चढ गया। ऊपर जा, उसने इशारा कर दिया जिसको पाते ही वे एक के पीछे एक सब चढ़ने लगे।

तानाजी ऊपर खड़ा हुआ था और जगतसिंह गढ की कैफियत देखने के लिये इधर उधर घूमने लगा। यदि कोई प्रश्न पूछता भी तो वह राजपूत भाषा में जवाब दे देता जिससे उस पर कोई सन्देह न करता। इधर जो मनुष्य ऊपर चढ कर आता तानाजी उससे अपने शस्त्रों से तैयार रह कर जमीन से दबक रहने को कहता। इस प्रकार कोई बारह मावला ऊपर चढ आये। तब

उन्होंने कील ठोक कर उसमें दो रस्सियाँ बाँधी। इतने में झुंझार बुर्ज के पास घूमते हुए एक राजपूत को नीचे के दर्रे में कुछ गड़बड़ का संदेह हुआ और उसने डाट कर पूछा। उसे पहले ही जैसा उत्तर मिला, परन्तु उससे उसका समाधान न हुआ। कहाँ से आवाज आ रही है यह जानने के लिये वह जिधर तानाजी खड़ा था उधर आने लगा। अँधेरी रात के कारण तानाजी उस मनुष्य को नहीं देख सकता था। परन्तु तीर चलाने के लिए उसे देखने की आवश्यकता भी नहीं थी। वह शब्द-वेध करना जानता था। आहट की दिशा में कान लगा कर उसने तीर छोड़ा जिससे वह मनुष्य धड़ाम-से नीचे गिर पड़ा। वह तीर ऐसी सीध से उसके कलेजे में लगा कि वह बेभाव नीचे गिरा और फिर न उठ सका। अब तानाजी बे-धड़क था। तानाजी के पचासों मनुष्य कमन्द और दोनों रस्सियों की सहायता से ऊपर आ पहुँचे।

उन लोगों का पहला काम था झुंझार दरवाजे को रोके रह कर उसके बुर्ज पर अपना अधिकार कर लेना। दूसरा काम था कल्याण दरवाजे को खोल देने का। झुंझार बुर्ज पर एक एकचक्रा तोप थी, उस पर अधिकार करना भी जरूरी था। तानाजी ने देखा कि यदि राजपूत इस तोप का उपयोग करने लगेंगे तो हम लोगों की बुरी हालत होगी। इस आपत्ति को दूर करने का एकमात्र उपाय यही था कि किसी प्रकार तोप को अपने कब्जे में कर लिया जाए। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ वह अपने मनुष्यों को झुंझार दरवाजे पर लाया। पीछे कहा जा चुका है कि जिस दर्रे में से होकर तानाजी अपने मावले वीरों को लाया था उस दर्रे के और झुंझार बुर्ज के बीच में एक दरवाजा था। यह दरवाजा हस्तगत कर झुंझार बुर्ज अपने अधीन

करना जरूरी था। इसलिये सब मनुष्य पहले उसी दरवाजे पर पहुँचे और वहाँ के सिपाहियों का काट-छाँट करने लगे। उन्होंने 'हर हर महादेव' या 'जय भवानी माता आदि किसी प्रकार की गर्जना नहीं की। तानाजी अच्छी प्रकार जानता था कि जय मिलने के लिए दूसरे स्थानों के शत्रुओं को सदेह होने देना ठीक नहीं है। गर्जना करने से सब गढ सावधान हो जाता जिससे कल्याण दरवाजा खोल कर अपने भाइयों को अन्दर लाना तानाजी के लिए कठिन हो जाता। तानाजी ने अपने लोगों को बिना किसी शब्द के काम करने के लिए कहा था। उन मावलों ने भी किसी प्रकार की आवाज या श्वासोच्छ्वास तक का शब्द न करते हुए झुझार दरवाजे वाले शत्रुओं का जरा देर में काम तमाम कर दिया।

अकस्मात् यह शैतान की औलाद क्या पृथ्वी के पेट से निकल आई ?—इस प्रकार आश्चर्य करते हुए दरवाजे वाले पठान पाषाण सदृश होकर औचक देखते रह गए। वे अपने शस्त्रास्त्र तक न उठाने पाए। इन लोगों का वध कर मावलो का रक्त विशेष रूप से उत्तेजित हो उठा जिससे वे अत्यधिक क्रूर दिखाई देते थे। झुझार बुर्ज के चोकीदारों में से कोई नशे में निद्रा ले रहा था, कोई आपस में दिल्लगी कर रहे थे, कि इन पचास वीर मावलों ने उन पर आक्रमण किया। उन लोगों को अपने शस्त्र उठाने या ढूँढने तक का अवसर न मिल सका। उन लोगों की बहुत ही बुरी अवस्था हुई। किसी की बन्दूक भरी नहीं थी, किसी को बारूद का ही पता नहीं था, किसी का कोई और बाधा थी। ऐसी दशा में मावलों का हमला हो जाने के कारण उनमें से एक भी मनुष्य जीता न बच सका। इधर एक मावले ने जाकर तोप में कुछ कर दिया जिससे कोई उसे चला न सकता था।

एक बुर्ज पर इस प्रकार की धूम मची, वह मावला मण्डली अब कल्याण दरवाज़े की ओर गई। तानाजी ने दरवाज़े पर के सब सिपाहियों को मरवा डाल कर दरवाज़ा खोल दिया और अपने भाई सूर्याजी तथा उनके साथियों की राह देखने लगा। वह जानता था कि हज़ार दो हज़ार शत्रुओं के साथ ४९ लोगों का लड़ना मूर्खता है। इसने झुंझार बुर्ज, जहाँ कि वह एकचक्री तोप थी, और दो दरवाज़े रोक लिए थे। अब गढ़ के बीच में जाकर लड़ना भाई की सहायता के बिना संभव नहीं था। अभी तक तो सब काम चुपचाप होगया परन्तु अब इसका मौका न था। इसलिए उसने अपने साथियों को वहीं दबके हुए बैठे रहने की आज्ञा दी। इन दोनों प्रसंगों में केवल एक मावला मारा गया।

दूसरी ओर जगतसिंह घूमता-घूमता बालेगढ़ तक पहुँचा। वहाँ उसका मित्र विशालदेव मिल गया। जब विशालदेव ने पूछा कि 'तीन चार दिन कहाँ रहे' तो जगतसिंह बोला, "यह समय इस प्रश्न के उत्तर देने का नहीं है; पहले कमलकुमारी का हाल कहो।" तब उसको मालूम हुआ कि उदयभानु ने देवलदेवी को जबर्दस्ती कमलकुमारी से अलग कर दिया है और उसे गढ़ के राजमहल में ला रखा है। कमलकुमारी वहीं, बालेगढ़ के महल में थी। जगतसिंह यह सुन कर बड़ा दुखी हुआ और उसे निराशा होगई कि अब कमलकुमारी से मिलना असंभव है। वह वहाँ से चल दिया। यद्यपि मध्यरात्रि में अभी देर थी तथापि उसे उदयभानु का विश्वास नहीं था कि वह दो एक घण्टे तक ठहरेगा। इसलिए, तानाजी से मिलने के लिए कल्याण दरवाज़े की तरफ वह दौड़ा। उसने अनुमान किया कि इस समय वे लोग कल्याण दरवाज़े पर आगए होंगे।

तेरहवाँ परिच्छेद

मध्यरात्र

बालगढ़ के एक भवन में कमलकुमारी हताश होकर रो रही थी। ज्यों ज्यों एक एक क्षण बीतता था उसकी विडम्बना का समय नज़दीक आता जाता था। शायद वह कुछ कर न बैठे, इस भय से उसके ऊपर हबशियों और खोजा का पहरा रक्खा गया था। पहने हुए वस्त्रों से भी वह अपने गले में फाँसी नहीं लगा सकती थी क्योंकि उसके ऊपर उन पहरेदारों की बड़ी कड़ी नज़र थी। हबशी तथा पहरेदार इतनी डरावनी सूरत के थे कि बराबर उन्हें देखती रहने से ही वह आधी मर चुकी थी। जब से उसे देवलदेवी से अलग किया गया था, वह सदा आँसू बहाती रहती थी यहाँ तक कि, अन्त में, उसकी आँखों में आँसू की बूँद भी न रह गई थी। उसकी दोनों आँखें फूल गई थीं। देवलदेवी ही उसका एकमात्र सहारा थी, परन्तु अब वह भी उसके पास न थी। अब बेचारी कमलकुमारी बिलकुल असहाय, निरुपाय होकर पड़ी थी। इसी अवस्था में एक पहर रात बीत गई।

आधीरात होने में क़रीब चार घण्टे और शेष रहे थे। कि इसी समय उदयभानु और अमर सिंह पर बाज़ा ने उसके महल में प्रवेश किया। उनको देखते ही कमलकुमारी भय

के मारे काँपने लगी। प्रत्यक्ष मृत्यु को देख कर भी उसको इतना डर न लगता जितना काल से भी कठोर हृदय वाले उस मनुष्य को देखकर उसे हुआ। उसने उठकर खड़ी होने का प्रयत्न किया परन्तु अब उसमें उतनी ताकत नहीं रही थी। बेचारी उसी प्रकार, अब आगे क्या होता है, इस प्रतीक्षा में बैठी रही। उदयभानु अकड़ के साथ उसके पास गया और कपटभरी वाणी में उससे बोला, "कमलकुमारी, तेरा-हमारा विवाह होने में अब केवल दो-तीन घड़ी की ही देर है। शादी के समय दुलहन बड़ा आनन्द मनाती है, परन्तु तू तो यह पागलों का सा काम कर रही है। उठो, यह शोक छोड़ दो। यह काजी साहब आए हैं। इनसे पहले इस्लाम धर्म की दीक्षा लो। उसके बाद हम लोगों का निकाह हो जाएगा। क्या अब भी तुम्हें आशा है कि कोई तुम्हें मुक्त करने आवेगा? तुम्हारा भगवान् एकलिंग भी यदि इस समय आजाए तो वह तुम्हें मेरे हाथ से न छुड़ा सकेगा। फिर क्यों नाहक अपने मन को दुःख देती हो? आओ इधर को आओ; देखो, ये काजी जी तुम्हारे लिए खड़े हैं।"

उदयभानु अपनी समझ में बड़े मधुर ढँग से बातें कर रहा था और अपने व्यवहार को बड़ा सौम्य समझता था। परन्तु उसका एक एक शब्द गरम तेल के समान उसके कान में दाह करता हुआ हालाहल विष के समान उसके हृदय में जाकर लगा। वह दिल से चाहती थी कि उदयभानु की खूब भर्त्सना करे परन्तु उस के मुख से कोई शब्द नहीं निकला। बेचारी कर ही क्या सकती थी?

इतनी मृदुता से बोलने पर भी कमलकुमारी कुछ उत्तर नहीं देती, यह देख उदयभानु बहुत चिढ़ा। उसने उसके शरीर को पकड़ कर उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। यह देख कमलकुमारी

एकदम उठ खड़ी हुई, मानों तमाम शक्ति आकर उसमें सहसा संचित हो गई हो। उसने चिल्लाकर कहा, "उदयभानु ! तेरे मन में कुछ भी भलमनसाहत या शर्म हो तो मुझे अब अधिक न सता। अब तक मुझे शक्ति नहीं थी, पर अब शक्ति आ गई है। मैं जो चाहूँ सो कर सकती हूँ। मैं अपने शरीर में तेरे दुष्ट हाथ का स्पर्श न होने दूँगी। इससे अच्छा है कि मेरा जान चली जाए।"

कमलकुमारी इतनी फुर्ती से उठी और इतने गुस्से में भरकर वह चिल्लाई कि उदयभानु अवाक् हो उसकी ओर देखता रह गया। वृद्ध काजी का हृदय भी कुछ पसीज सा गया। इसके बाद वह आगे बढ़ा और बोला, "बेटी कमल ! क्या तू पागल हो गई है ? क्या अल्लाह ने यह सुन्दर कोमल शरीर इस लकड़ी के जूते (पादुका) के साथ जलाने के लिए दिया है ? या अल्लाह ! या अल्लाह ! ये हिन्दू लोग कितने दीवाने बन गए हैं देखो बेटी, यह उदयभानु शूरवीर, खूबसूरत, तेरी ही जाति का राजपूत है। इसके साथ ब्याह करने से तेरा मर्तबा बढ़ जाएगा। दक्खिन के सूबेदार की तू बीबी हो जाएगी। आओ बेटा, यह हठ छोड़ दो—मैं तेरा पिता हूँ। तू मेरी बात सुन—"

'पिता'—यह शब्द सुनते ही कमलकुमारी का धैर्य्य विगलित हो गया। "पिता जी—पिता जी—तुम्हारी प्रिय कमलकुमारी की क्या अवस्था हो रही है ! उस दुष्ट बादशाह ने तुम्हारी क्या हालत की होगी ! हा भगवान—" इस प्रकार वह विलाप करने लगी। अपने हाथों में सिर को पकड़ कर वह बैठ गई। पिता का स्मरण होते ही उसका वह आवेश उतर गया था। उसी समय उदयभानु बोला, "कमलकुमारी, अब तुम्हें अपने पिता जी की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उन्होंने कभी का स्वर्ग का रास्ता पकड़

लिया है। अब मेरे सिवाय तुम्हें दूसरे किसी का आधार नहीं है। पर आश्चर्य है कि मैं तो तुम्हें अपनाता हूँ और तुम मुझसे भागती जाती हो। तुम्हें मैं अब क्या समझाऊँ। आओ, देखो, मैं ही अब तुम्हारा मालिक हूँ।"

इतना कह कर उदयभानु बड़ी धीरता से आगे बढ़ा। वह कमलकुमारी को हाथ से उठाना चाहता ही था कि सहसा नीचे से 'तोबा तोबा' की आवाज सुनाई दी। बड़े क्रोध से उदयभानु कह उठा, "क्या है" ? इस समय एक राजपूत सिपाही ने भीतर आकर कहा—"हजरत ! किले में तमाम शैतान के बच्चे इधर-उधर फैले हुए हैं। इन शैतानों ने कितने ही आदमियों का खून कर दिया। यह महरठों की औलाद बड़ी भयंकर है। कैसे आए, कहाँ से आए, कितने आए—कुछ समझ में नहीं आता। और अपने लोग तो सब भागे जा रहे हैं, एक भी अपने ठिकाने पर दिखाई नहीं देता। कितने ही लोग चट्टान पर से नीचे कूद पड़े, कितने ही लोग नीचे भाग गए। यदि आप अभी चले चलें तो कुछ बन सकता है, नहीं तो हम सब मारे जाएँगे और गढ़ भी हाथ से चला जाएगा।"

उदयभानु ने इतना लम्बा-चौड़ा भाषण आज तक किसी सिपाही के मुख से नहीं सुना था। दूसरे अवसर पर यदि कोई सिपाही उससे इतना अधिक बोलने का साहस करता तो पहले-पहल वह उसी की गर्दन उड़ाता। परन्तु यह प्रसंग इतना आकस्मिक था कि कौन क्या कर रहा है, वह स्वयं क्या सुन रहा है, इसका उसे विशेष ज्ञान न हो सका। खबर देने वाला और भी कुछ बकना चाहता था कि उसने डाँट कर कहा; "ओ बदमाश ! क्या कह रहा है ? कौन महरठे ? कैसे दुर्ग पर आए ?

क्या मेरे आनन्द के अवसर पर वाधा डालने के लिये ही तू यहाँ आया है ? जा भाग यहाँ से। पहले निकाह हो जाएगा, तव हम वाहर आएँगे। काजी साहव, आगे आइए और—"

इसी समय 'तोवा तोवा ! अल्लाह ! अल्लाह !' की चिल्लाहट फिर सुनाई पडी। उदयभानु आगे न वोल सका। वह क्रोध से पागल सा होगया और झुँझला कर कहने लगा—"यह सव फन्द-फितूर इस रायजी का ही है ! इन काफिरों की गर्दन साफ कर कल ही इस रायजी की कौम का सर्वनाश कर डालता हूँ ! क्रोध में भरकर उसने अपनी तलवार खींची और वाहर आकर देखा, चारों तरफ लोग भागे जा रहे थे—चिल्ला रहे थे। वालेगढ के पास वडी भीड थी और इधर-उधर से महरठों का सिंह-गर्जन "हर हर महादेव" सुनाई दे रहा था।

अँधेरे के कारण कुछ अच्छी तरह दिखाई नहीं देता था। उदयभानु ने मशालें जलवाने के लिए आज्ञा दी। अपना नाश होते देख उसने एक रणगर्जना की और अपने राजपूत लोगों को धीरज बँधाया। वह स्वयं अपना पटा घुमाता हुआ वालेगढ से नीचे आया—नहीं, कूद पडा। कमलकुमारी के महल में इस घटना की सूचना देने वाला वह सिपाही क्षण भर के लिये पीछे ठहर गया और धीरे से वोला, "कमलकुमारी, डरो मत, तुम्हारा छुटकारा अभी होगा। इस समय तुम्हारी सखी को छुडाने को मैं जाता हूँ।" तदनन्तर वह उदयभानु के पीछे पीछे चला गया। कमलकुमारी ने उसकी आवाज पहचान ली और हर्ष से ऊपर को मुँह उठा कर देखा। परन्तु इतनी ही देर में वह वोलने वाला तथा अत्याचारी उदयभानु वहाँ से अदृश्य होगए थे। काजीजी डर के मारे एक कोने में जा छिपे थे।

तानाजी ने कल्याण दरवाजे पर सूर्याजी की सेना की वडी

प्रतीक्षा की। किन्तु जब वह उचित समय पर नहीं आई तब उसने चुने हुए लोगों के साथ बालेगढ़ तक मार्ग काटने का साहस किया। उसके साथ जगतसिंह तो था ही। वृद्ध शेलार-मामा ने तो इस रात को कमाल ही कर दिया। जब इन लोगों ने इस प्रकार उद्यम किया तो राजपूत सिपाही भी होश में आगए। उन्होंने भी अपने अस्त्र सँभाले और लड़ाई आरम्भ की। शूर तानाजी ने आगे बढ़ कर बालेगढ़ तक शत्रुओं को पीटा। इतने में जगतसिंह ने गढ़ के भीतर जाकर सब सिपाहियों को घबड़ा दिया।" उदयभानु जी कहाँ है? उन्हे खबर करनी चाहिए। यह गढ़ तो काफिरों ने ले लिया। तोबः तोबः, यह महरठे नहीं बल्कि शैतान हैं।"—इस प्रकार कहता हुआ वह कमलकुमारी के महल में जा घुसा और ऐन मौके पर उदयभानु को घबड़ा कर उसने उसके रंग का बेरंग कर दिया। बाद में स्वयं उसके पीछे पीछे बाहर आकर सीधा देवलदेवी के महल में जाने के लिये चला, परन्तु उसे कोई मार्ग न दिखाई दिया।

अब तो सूर्याजी और उसके साथी ऊपर आगए थे और राजपूत भी तैयार होगये थे। बालेगढ़ के आस-पास एक हलचल मची हुई थी। मनुष्य से मनुष्य भिड़े हुए थे। तलवार का संगीत हो रहा था। बाणों की सूँ-सूँ फुँकार होती थी। कई राजपूतों के बाएँ हाथों में मशालें थीं और दाहिने हाथों में तलवारें—क्योंकि अँधेरे में वे एक दूसरे को देख नहीं सकते थे—और वे वैसे ही, एक हाथ से, लड़ रहे थे। इस उजाले का लाभ महरठों ने उठाया। बालेगढ़ और कल्याण दरवाजे के बीच में भैरोनाथ जी के मन्दिर के पास उदयभानु और तानाजी का युद्ध चल रहा था। दोनों को अपने अपने कौशल की पराकाष्ठा से लड़ते हुए जगतसिंह ने देखा।

तानाजी और जगतसिंह दोनों युद्धकला विशारद थे। उनका युद्ध देखकर जगतसिंह विस्मित हो वहीं खड़ा रह गया। तलवार के हाथ नहीं चल रहे थे, बिजलियाँ दौड़ रही थीं। ढालों के ऊपर चट् खच् चोटें पड़ रही थीं। अन्य चारों तरफ भी ऐसा ही युद्ध हो रहा था। उभय पक्ष अपने अपने लोगों को धीरज बँधाकर उत्तेजित कर रहे थे और उनके मुख से उत्साह बढ़ाने वाले शब्द निकल रहे थे।

तानाजी और उदयभानु में एक दूसरे को परास्त करने के लिए परी होड़ लगी हुई थी। नाटक के वीरों के सदृश वे ललकारते थे, परन्तु कोरे शब्दों की वृष्टि नहीं करते थे बल्कि दाँतों से होठ चबा चबा कर, बाहु के बल से और पैंतरे बदल बदल कर वे अपने खड्ग द्वारा एक दूसरे का संहार करने पर तुले हुए थे। पसीने से उनका शरीर भर गया था और रुधिर की धाराएँ बह रही थीं। इतने में उदयभानु के तलवार के एक आघात से—बड़ा भयानक वह आघात था—तानाजी की ढाल टूट गई। ऐन मौके पर दूसरी ढाल कैसे मिल सकती थी। वह दाहिने हाथ से पटा फेर कर शत्रु का वार चुकाता था और बाएँ हाथ में कमर में रखा हुआ दुपट्टा खोल कर उसे अपने हाथ में लपेट कर उसने ढाल बनाई। परन्तु इस उपाय से कहाँ तक निबाह होता। उदयभानु ने शत्रु के संकट से लाभ उठाने की कोशिश की पर उसे तत्काल सफलता न मिल सकी। जगतसिंह ने देखा कि अब थोड़ी ही देर में तानाजी गिर जायगा। अतएव वह अपनी दिशा बदल कर उन दोनों की ओर जाने का मार्ग देखने लगा। उदयभानु अकेले लड़ रहा था, इधर तानाजी उदयभानु एक कदर से जो बाहु पर लड़ रहा था, इसलिए तानाजी की सहायता को जगतसिंह ने जाना उचित समझा। इतने ही में

उदयभानु का तलवार तानाजी के दाहिने हाथ की कुहनी पर जा गिरी जिससे उनका वह हाथ कट गया। हाथ को टूटा देख उदयभानु ने गरदन के पास एक और वार किया और तानाजी को गिराकर एक तीसरा वार कलेजे के ऊपर मारा। वह वार मर्म पर पड़ा और तानाजी ने—"हाय महाराज, आपकी सेवा पूरी न हो सकी। आज ही आपकी सेवा का ऋणानुबंध टूटा जाता है। ईश्वर की इच्छा!" कहते कहते प्राण छोड़ दिए।

अपने प्रतिपक्षी को इस प्रकार गिरा कर भी उदयभानु को संतोष नहीं हुआ। उस दुष्ट की इच्छा हुई कि उसके पवित्र शव को पैरों से लिथेड़े और उसने अपने भ्रष्ट मुख से ये अप-शब्द कहे—"ऐ काफिर, जा, नरक में जाकर गिर। शैतान के राज्य में चला जा और उसे जाकर बतला कि मैंने तुझे वहाँ भेजा है।" इस प्रकार चिल्लाते हुए उसने शव को ठुकराने के लिए अपना पैर उठाया परन्तु इसी समय किसी तलवार की एक भयंकर चोट से उसके पैर के दो टुकड़े हो गए। साथ ही उसके कानों में ये शब्द पड़े—"अरे दुष्ट! राजपूतों के कुल मे जन्म पाकर भी कितने नीचता के कर्म तू अभी करेगा? समरांगण में जिसके साथ चार घड़ी तूने हाथ से हाथ मिलाया उसके शव की वन्दना करने के स्थान मे तू उसे लिथेड़ने के लिए पैर आगे बढ़ाता है! जरा इधर को मुँह कर। अपनी शूरता मुझे भी देखने दे।"

ये शब्द सुनते ही उदयभानु ने मुँह उठा कर देखा, परन्तु बोलने वाला मनुष्य परिचित सा न मालूम हुआ। उसकी मेवाड़ी भाषा से वह राजपूत अवश्य प्रतीत होता था। महरठों की ओर से यह राजपूत लड़ रहा है और उनका पक्ष ले रहा है—यह है कौन?—उदयभानु न जान सका। जगतसिंह को उसने कभी नहीं देखा था। वह समझा कि अपनी ही सेना का कोई

सिपाही पागल होकर विपरीत बदला लेने आया है। वह उसे गालियाँ सुनाने लगा। परन्तु जगतसिंह ने हँस कर कहा, "उदयभानु, मैं नहीं जानता था कि तेरी वीरता अपशब्द सुनाने में तथा मती होती हुई किसी स्त्री का राक कर उसका पातिव्रत्य भंग करने में ही है। परन्तु आज यह बात सत्य सिद्ध होगई। फिर इस तलवार की जरूरत ही क्या है ? फेंक दो इसे।"

जगतसिंह का यह कटु भाषण उदयभानु कैसे सह सकता था ? फेंक दो'—ये शब्द सुनते ही उसने जगतसिंह पर तलवार का हाथ चलाया और मुख से मरहठों को काफिर होने के कारण गालियाँ सुनाने लगा। जगतसिंह केवल तिरस्कार से हँस पड़ा। वह सावधान था। वार को ढाल पर लेकर उसने अपनी रक्षा की और दोनों में युद्ध शुरू हुआ। जिस प्रकार का तानाजी और उदयभानु में युद्ध हुआ था, बिलकुल उसी की पुनरावृत्ति अब हो रही थी। भेद केवल इतना ही था कि इस समय उदयभानु का मुख अपशब्दों से भरा हुआ था।

था, यह समाचार दावानल के समान फैल उसे सुनकर खोज करता करता वहां आया और जगतसिंह लड रहे थे। उदयभानु और Apr हुए थे और उदयभानु चिल्ला रहा था, "जैसे cles ply ing ve को नरक में पहुँचाया है वैसे ही तुझे भी पहुँचा- for c ma इस पर जगतसिंह गर्ज कर कहता था, "देखें, कौन नरक में भेजता है—तू या मैं ?"

'तानाजी' और 'नरक'—ये शब्द सुनते ही शेलारमामा का उद्वेग और संताप उभर आया। वह दोनों के बीच में पहुँचकर जगतसिंह से बोला, "जगतसिंह जी ! मेरे वीर भाजे को मारने वाले इस दुष्ट को दण्ड देने का कर्तव्य मेरा है। तुम हट जाओ।

महरठा वीर अस्सी वर्ष की अवस्था में भी किस प्रकार अपनी हड्डियों में बल रखता है, यह मतवाला कुल-कलंक देख ले। ओ दासीपुत्र, इधर आ।" इतना कहकर क्रोधोन्मत्त सिंह की भाँति शेलारमामा उदयभानु के ऊपर झपटा। उसका वह क्रोध और वेग देखकर जगतसिंह हट गया। उदयभानु भी क्षण भर के लिए विस्मित हो स्तम्भित रह गया। शेलारमामा के पटे के एक तड़ाके से वह होश में आया और अस्सी वर्ष के वृद्ध के साथ तीस-पैंतीस वर्ष के युवक का युद्ध आरम्भ हुआ।

तानाजी का युद्ध में अन्त हुआ, यह खबर जैसे-जैसे फैलने लगी वैसे वैसे महरठे वीरों का धैर्य लुप्त होने लगा और राजपूत ज़ोर करने लगे। जिस ओर से रस्सी, कमन्द आदि की सहायता से ये लोग ऊपर आए थे उस ओर अब सूर्याजी लड़ रहा था और येसाजी कल्याण दरवाजा रोके हुए था। महरठे इतने धैर्य-विचलित हो गए थे कि रस्सी की सहायता से उसी मार्ग से भागने के लिए वे उधर दौड़ने लगे। उन्हें भागते देख राजपूतों ने उनका पीछा किया। सूर्याजी तानाजी का हाल सुनकर भी अपने पूरे उत्साह से युद्ध कर रहा था। परन्तु जब उसने देखा कि तानाजी के पतन के समाचार से ये लोग भागे जा रहे हैं तो उसने पहले जाकर उन रस्सियों को काट डाला और फिर वहीं खड़ा होकर अपने मावला लोगों से बोला—"जाओ, नामर्दों! मरो; नीचे कूद कर मर जाना चाहते हो तो मरो, मैंने रस्सियों को काट डाला है। वह तुम्हारा बाप वहाँ मरा पड़ा है। उसको इन महारों (नीच लोग) के हाथ कुत्ते की गति मिलेगी—इसका भी कुछ विचार करो।"

सूर्याजी के इन हृदयभेदी शब्दों ने उन लोगों के ऊपर जादू का असर किया। गढ़ पर से नीचे कूद कर मर जाना या लड़ते हुए गढ़

लेकर मरना—ये दो बातें उनके सामने उपस्थित हुईं। उधर से शेलारमामा उदयभानु के साथ लड़ता हुआ अपने लोगों को फटकार रहा था। उस बूढ़े की वीरता को देखकर भागने वाले महरठे लज्जित हुए और सहसा लौटकर पीछा करने वाले राजपूतों पर टूट पड़े। इतने में बूढ़े के पटे का एक वार उदयभानु की कनपटी पर पड़ा, जिससे, रगें कट जाने के कारण, उदयभानु पृथ्वी पर लोट गया।

उदयभानु के गिरने की वार्ता भी तुरन्त फैल गई। इधर ऐसी सूचना मिली कि महरठों के और भी लोग ऊपर चढ़ रहे हैं। अपना नेता गिर पड़ा है—उसके स्थान पर कोई नहीं है—महरठों की सेना चढ़ रही है—यह सोचते ही अब राजपूतों की वैसी ही दशा हुई जैसी थोड़ी देर पहले महरठों की हुई थी। राजपूत भागने लगे। महरठों के तीन विभाग होने के कारण वे जिधर ही भागते उधर ही उन्हें महरठे दिखाई देते। कल्याण दरवाजे की तरफ गए तो वहाँ सूर्याजी अपने थोड़े से सिपाहियों के साथ मौजूद था। उसने कितने ही राजपूतों को मारा। बीच में शेलारमामा सिंह की भाँति गर्ज रहा था। सूर्याजी चारों ओर घूम रहा था। पीछे से महरठे मार कर रहे थे। ऐसी अवस्था में बेचारे हारे राजपूत क्या करते? कोई गढ़ पर से नीचे कूद पड़े, और अधिकतर हार कर शस्त्र फेंक कर बैठ गए। अन्त में सूर्याजी ने नरसिंह के द्वारा घोषणा कराई कि, "जो कोई शस्त्र फेंक कर शरण में आवेगा उसकी हानि नहीं होगी।" इस बार सब राजपूतों ने अपने अपने शस्त्र लाकर सामने रक्खे और सूर्याजी के सामने हाथ बाँध कर प्रणाम किया। सूर्याजी ने उन्हें अभयदान देकर अपने अपने स्थानों पर बैठने को कहा। गढ़ पर अधि-

कार हो जाने का समाचार महाराज को देने के लिये शेलारमामा ने येसाजी से कह कर वास के एक ढेर में आग लगवा दी।

ताना जी की अकालमृत्यु से उत्पन्न हुआ दुःख अपने वीरोचित कर्म में लगे रहने के कारण उन तीनों ने अभी तक किसी प्रकार रोक रक्खा था। परन्तु अब शान्ति स्थापित हो जाने के बाद जब वे आपस में मिले तो उनसे वह शोक न रोका गया और उनके आँसू बह चले। सूर्याजी तो तानाजी का भाई ही था और इसी प्रकार शेलारमामा उसका मामा था। अतः इन दोनों को तो शोक होना स्वाभाविक था ही। परन्तु उस समय मालूम होता था कि सबसे अधिक दुःख जगतसिंह को हुआ है।

चौदहवाँ परिच्छेद

महाराज

तानाजी महाराज की आज्ञा तथा जीजाबाई का आशीर्वाद लेकर जिस दिन निकला उसी दिन से प्रतिदिन का वर्णन उनके पास भेजना वह कभी न भूलता था। परन्तु अन्त के चार पाँच दिनों की घटनाएँ इतनी शीघ्रता से हुईं कि उनकी खबर भेजने के लिए तानाजी को बिलकुल अवसर ही नहीं मिला। उसके पास कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं था जिसके हाथ वह पत्र लिखवा कर भिजवा देता। चारण के वेश में शत्रु के स्थान में जाकर किस प्रकार वहाँ के लोगों को वश में किया तथा अब गढ़ लेना कितना सुगम था—यहाँ तक का समाचार तो वह भेज चुका था, परन्तु इसके आगे का वृत्तान्त महाराज को विदित नहीं था। प्रति दिन रात को वह गढ़ की ओर देखते थे और समाचार न मिलने पर इस प्रकार समाधान कर लेते थे कि शायद कोई और घटना ही नहीं हुई होगी, या शायद घटनाएँ इतनी जल्दी जल्दी हुई होंगी कि सूचना देने का तानाजी को अवसर ही न मिला हो। परन्तु दो दिन तो इस प्रकार समाधान हुआ, तीसरे दिन यह समाधान कठिन था, क्योंकि तानाजी शिवाजी महाराज की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया करता था। उनकी आज्ञा के बाहर वह कभी जरा भी नहीं जाता था। उसका हरेक काम निय-

मित था। प्रतिदिन का हाल पत्र द्वारा या जासूस के मुँह से उनके पास बराबर भेजते रहने की वह उनसे प्रतिज्ञा कर आया था।

जब तीन दिन तक कोई ख़बर न मिली तो महाराज को चिन्ता हुई। शायद कुछ धोखा या दगाबाजी हुई हो। सम्भव है वे लोग ऊपर से विश्वास दिला कर तानाजी को उदयभानु के पास लिवा गए हों और उस दुष्ट ने मौका पाकर उसे चट्टान पर से नीचे गिरवा दिया हो। यदि ऐसा न होता तो तानाजी किसी न किसी प्रकार अवश्य समाचार भेजता। तानाजी हर प्रकार के हुनर जानता था। किसी की नकल वह अच्छी तरह से बना लेता। उसकी वाणी इतनी मधुर थी कि हर किसी का मन आकर्षित कर लेती। बचपन से उसने कितने नए नए भेष धारण कर कहाँ कहाँ प्रवेश किया था, यह सब महाराज को विदित था। कभी गोसाई का, कभी वंशी बजानेवाले का, कभी किसी वृद्धा का भेष बना कर वह अनेक बार दूसरों के भेद लाया था। महाराज को उसका स्मरण हुआ। जब महाराज ने उसके पत्र में पढ़ा कि उसने चारण के रूप में अमुक कवित्त सुना कर पहले लोगों को उत्तेजित किया और फिर उन्हें मिला लिया, तथा बाद में जब उन्होंने वह कवित्त भी पढ़ा, तो वह विस्मित होगए। जब वह पत्र उन्होंने जीजाबाई को सुनवाया तो वह भी विस्मित हुई। उनके नेत्रों में आनन्द के अश्रु भर आए और उन्होंने महाराज से कहा, "देखो, शिवाजी, इस प्रकार भेष बनाकर यह शत्रुओं के डेरों में घूमता और उनमें भेद कराता फिरता है—क्या इसे यह डर नहीं कि यदि कोई मुझे पहचान लेगा तो मरवा डालेगा ? देखो तो, कैसा कवित्व है ! अब जब वापिस आएगा तो उससे कहूँगी, "आओ, चारण जी," और उससे वह कवित्त ज़रूर सुनूँगी। शिवाजी, तुम्हारे ऊपर उसकी सच्ची श्रद्धा है।"

इस पर महाराज बोले, "माताजी, मैं क्या इसे नहीं जानता ! मैं भली भांति जानता हूँ कि मेरी विस्तृत परिवार-मण्डली में यदि कोई अपनी जान देकर मेरी जान बचाने वाला है तो वह केवल तानाजी है। जिस समय तोरणगढ़ पर अधिकार किया था तभी से मैं उसे देख रहा हूँ। सकट समय मे वह मुझसे कहा करता, "शिवाजी, तू पीछे होजा। मुझे आगे बढ़ने दे"—उस समय वह एकवचन में ही मुझसे बोला करता था, अब अनुरोध करता हूँ तो भी उस तरह नहीं कहता। श्रीधरस्वामी जी को पुरन्दरगढ़ से मुक्त करने के लिये वह स्वय बढ रहा था, परन्तु मैंने ही उसे नहीं बढ़ने दिया। अफ़ज़ल खाँ के सामने जाने के समय उसने कहा, "यदि वह तुम्हे नहीं पहचानता है तो मुझे ही अपनी बजाय उसके पास जाने दो। अगर कुछ चालबाजी करेगा तो मैं देख लूँगा।" जिस समय मैं दिल्ली से निकला उस समय भी उसका यही कहना था, वहाँ भी यही स्थिति थी। सकट के समय मुझे पीछे करा कर हमेशा अपनी गर्दन आगे बढ़ाने का ही उसका यत्न रहता है। जब तक वह मेरे पास मे है तब तक मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं। इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि जब उसने एक बार कोई कार्य करना स्वीकार कर लिया तब मुझे उस ओर देखने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इतना सब कुछ करके भी वह यह कहे कि "मैंने यह किया, मैंने ऐसा किया'—सो बात नहीं है। तानाजी की तो बात ही न्यारी है।"

इतना कह कर महाराज चुप हो गये। बाल्यावस्था की बातो का स्मरण करके उनका हृदय करुणा से भर गया। वे कुछ देर तक उसी अवस्था मे बैठे रहे। तदनन्तर बोले, "माता जी, आज मुझे चैन नहीं पड़ता। तृतीया तक की खबर मुझे मिली है। आज नवमी है। चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी और अष्टमी,

इन पाँच रोज़ की कोई खबर नहीं मिली। उसी के भरोसे पर रह कर मैंने कोई जासूस भी नहीं भेजा। आज सुबह से ही मेरे हृदय में चिन्ता सी व्याप रही है। क्या कारण है इसका, कुछ समझ में नहीं आता। आज के दिन और राह देखता हूँ— नहीं तो, सायंकाल होते ही कोंडाणागढ पर चला जाऊँगा। वह अगर संकट में होगा तो खुद मुझे ही जाना चाहिये। गढ़ लेने के उद्योग में भी तो उसे मेरी सहायता की जरूरत होगी। यहाँ खाली मक्खी मारने में लाभ ही क्या? वहाँ जाने से सब कुछ मालूम होगा। मुझ से अब नहीं रहा जाता।"

कहने को महाराज भाषण कर रहे थे अपनी माता जी से, परन्तु वास्तव में उनकी बातचीत आत्मगत ही थी। यह सदेह होते ही कि अपना परम मित्र और एकनिष्ठ सेवक संकट में फँसा है महाराज ने संकल्प किया कि अब खाली बैठने से प्रयोजन नहीं; उसकी रक्षा के लिए उसको सहायता देने को जाना आवश्यक है। जैसे तानाजी अपने स्वामी का परम भक्त था वैसे ही महाराज भी अपने सच्चे सेवक के परम भक्त थे।

महाराज का आत्मगत भाषण सुन जीजाबाई का विचार हुआ कि वह बेकार घबड़ा रहे हैं— जाने का, वास्तव में, कोई कारण नहीं है। परन्तु ऐसी बातों में जीजाबाई का कोई वश न चलता था। जब एक बार महाराज ने निश्चय कर लिया कि अमुक कार्य ठीक है और करना चाहिए तो वह वैसा ही करते थे। उसमें कभी अन्तर न पड़ता। महाराज के मन में जम गया कि तानाजी किसी फन्दे में जरूर फँसा है जिसके कारण वह मुझे खबर न दे सका, इसलिए उसकी सहायता को जाना आवश्यक है। तुरन्त उन्होंने अपने खास सरदारों में से दो को और बारगीरों में से पन्द्रह को आज्ञा की कि, "आज सायंकाल

को राजगढ छोड कर कोंडाणागढ पर जाना है, इसलिए सब तैयार रहो। उधर की खबर पाने के लिए एक चतुर खुफिया जासूस भी पहले रवाना कर दिया और खबर लेकर रात्रि को आये रास्ते में नियुक्त स्थान पर मिलने के लिए उसे आज्ञा दी। ये तमाम आज्ञाएँ दिन में ही देकर महाराज ने सारा दिवस तानाजी के संकट की चिन्ता में ही काटा। प्रतिक्षण उन्हें आशा होती था कि कोई खबर देने वाला आता होगा। साथ ही साथ उनका मस्तिष्क कोंडाणे गढ में बन्दी तानाजी को छुडाने के उपायों की कल्पना कर रहा था।

इसी क्रम में सूर्यास्त होगया और अँधेरा छाने लगा। उस रात के पहले प्रहर में महाराज की दृष्टि कम से कम दस-बारह बार तो अवश्य कोंडाणागढ की तरफ गई होगी। परन्तु कोई उजाला दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने अपने निश्चय के अनुसार अपनी प्यारी काली घोडी पर जीन कसने को कहा। इस घोडी पर महाराज का बडा स्नेह था। उसने कितनी ही बार अपनी पीठ पर महाराज को युद्ध के संकटों से बचाया था। इस घोड़ी का नाम उन्होंने 'कृष्ण घोडी' रक्खा था। उसे तैयार करने की आज्ञा दे उन्होंने अपना पायजामा पहना। बारीक कपड़े का कुर्ता पहन उसके ऊपर जाली का एक लम्बा जामा पहना। तदनन्तर सिर पर एक ऊँची टोपी धारण की, उसके ऊपर एक पतला दुपट्टा बाँधा और दुपट्टे के ऊपर अपना किरीट रक्खा जिसे वह सदा लगाया करते थे। हाथ में व्याघ्रनख धारण कर एक पटा भी अपने साथ लिया, पीठ पर ढाल बाँधी, और तब दोनों सरदार, पन्द्रह बारगीर और बालाजी आवजी चिटनवीस के साथ महाराज की सवारी कोंडाणागढ को जाने के लिए बाहर निकली।

महाराज की सवारी कभी भी बड़े समारम्भ से नहीं निकला करती थी; उस पर भी आज तो चुपचाप खबर लेने के लिए ही जाना था । महाराज जब निकले तो सोलह घड़ी रात्रि बीत चुकी थी । राजगढ़ कोंडाणागढ़ से लगभग बारह या तेरह मील के फासले पर है । यदि तेज़ी से यह मण्डली जाती तो आधे पौने प्रहर के भीतर ही गढ़ की सीमा पर आ पहुंचती । किन्तु उतनी जल्दी करने का उनके लिए कोई कारण नहीं था । साथ मे इतने लोग होने पर भी महाराज चुपचाप थे । वह धीरे धीरे चल रहे थे । उनके आगे एक सरदार और पाँच बारगीर थे । लगभग आधा मार्ग तय किया होगा कि आगे चलने वाला एक बारगीर चिल्ला उठा, "महाराज, कोंडाणागढ़ के इधर, पूरब की ओर, आग दिखाई देती है" । महाराज ने देखा तो सचमुच आग थी । शेलारमामा कह गया था कि किसी नियत स्थान पर आग जलाएँगे । उसके अनुसार, जब निश्चय होगया कि ठीक उसी दिशा मे आग जलरही है तो महाराज के मुख से सहसा ये उद्गार निकल पड़े—"तानाजी ! धन्यवाद है तुम्हे ! सचमुच तुम शूरवीर के बेटे हो ।" इतनी देर तक जो भार-सा उनके हृदय पर था वह मानो अब दूर होगया और वह इस दुविधा में पड़ गए कि अब आगे जाएँ या वापिस राजगढ़ को ही लौट चलें । इसी बीच मे वे उस गाँव मे आगए जहाँ जासूस को मिलने के लिए उन्होंने आज्ञा दी थी । उसकी राह देख कर उसकी सूचना के अनुसार कार्य करने का निश्चय हुआ और उन्होंने विश्रान्ति की इच्छा से आम के घने पेड़ो की छाया मे बैठने के लिए उस ओर घोड़ो का मुँह मोड़ा । नौकरों ने स्थान साफ करके वहाँ आसन बिछाए और मशाल जला दिए । महाराज का चेहरा, जो रास्ते भर म्लान था, इस समय खिल गया था और
९ चिटनवीस तथा हिरोजी फर्जन्द से बोले, "यह गढ़ अपने

हाथ में आजाने से बड़ा भारी काम बन गया। बादशाह से सुलह करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न देखकर मैंने यह गढ और पुरन्दर, दोनों, उसको देना स्वीकार कर लिया था। उसने मुझे पूना, सासवड और सूपे के प्रान्त तो दे दिए परन्तु उनमें जो गढ हैं उन सब पर अपना ही अधिकार रक्खा। क्या मैं उसके भीतरी अभिप्राय को नहीं समझता था? पर मैं कर ही क्या सकता था? जसवतसिंह और जयसिंह ने बहुत कुछ आग्रह किया कि इस समय यह संधि स्वीकार कर लो, फिर बाद में उसके ऊपर अच्छी तरह विचार कर सकते हो। मैंने भी बात मानली। पर बादशाह के दिल में विश्वास कहाँ से आया! एक ओर तो संधि करता है और दूसरी ओर छल से पकड़ने के लिए आदमियों को भेजता है। अब तो संधि की कोई बात ही नहीं है। मुझे बड़ी चिन्ता थी कि इस गढ को फिर से लेने में बड़ी कठिनाई होगी। परन्तु हमारा तानाजी बड़ा ही बहादुर शेर है। उस सिंह ने अपनी वीरता से यह गढ जीत ही लिया। बालाजी, आज से इस गढ को 'सिंहगढ' का नाम दिया। सब प्रकार से यह गढ इस नाम के योग्य है।"

शिवाजी महाराज सामान्यतः मितभाषी थे। जो मनुष्य कार्य करने वाले हुआ करते हैं वे प्रायः थोड़ा ही बोलते हैं। महाराज का स्वभाव भी ऐसा ही था। आज महाराज का इतना लम्बा भाषण सुन उस मण्डली के लोगों को आश्चर्य हुआ। परन्तु आज की बात ही और थी। इतनी देर से चिन्ता से उनका हृदय व्याप्त था। उन्हें नहीं मालूम था कि आधे रास्ते में गढ पर अधिकार होजाने की सूचना मिलेगी। उन्हें भय था कि गढ लेने में कोई संकट अवश्य उपस्थित हुआ होगा और तानाजी किसी धोखे का शिकार बना होगा। वह भय निर्मूल हुआ और

हृदय पर का बोझ हट गया । ऐसी अवस्था में आनन्द के तथा तानाजी के सम्बंध में प्रेम और आदर के ये उद्गार स्वाभाविक रूप से उनके मुँह से निकल पड़े ।

इस भाँति लगभग चार घड़ी और बीत गई । प्रभात हुआ और मुर्गों का बोल सुनाई देने लगा । ग्रामीण स्त्रियाँ अपनी अपनी चक्कियाँ चलाती हुई गारही थीं । चन्द्रमा निस्तेज था और पूर्व दिशा की ओर रक्तच्छटा दिखाई दे रही थी । महाराज अपने जासूस की प्रतीक्षा में थे परन्तु उसका अभी तक पता नहीं था । महाराज को फिर से चिन्ता उत्पन्न हुई । क्या वह आग नहीं थी, मिथ्या आभास ही था ? एक बार यदि यह भी मानलें कि वह आग ही थी तो भी यह कैसे कहा जा सकता है कि वह विजय की ही निदर्शक थी । संदेह होते ही उन्होंने फिर इरादा किया कि धीरे धीरे कल्याण की ओर चलें—वहाँ पहुँचकर कुछ खबर मिल ही जायगी । अतएव, जासूस को या अन्य किसी की प्रतीक्षा छोड़कर वह मण्डली फिर रवाना हुई । थोड़ासा चक्कर काट कर वे कल्याण की ओर पहुँचे तो गाँव भयाकुल सा दीख पड़ा । किसी गाँव वाले को बुला कर पूछा कि यह क्या हालत है । उसे कुछ संतोषप्रद वृत्तान्त मालूम नहीं था । उसने उत्तर दिया, "रात्रि को गढ़ पर ज़रूर कुछ हलचल मची थी । कोई कहते है कि महरठों ने गढ़ को लेकर उदयभानु को मार डाला, कोई कहते हैं कि उदयभानु ने तानाजी को मारकर सब महरठों का विध्वंस कर दिया । असल बात क्या है और क्या नहीं—इसी के भय से तमाम गाँव घबड़ा उठा है । अभी तो कोई नीचे आया नहीं है; फिर, क्या सच है सो भगवान ही जाने ।"

यह उत्तर सुन महाराज का कलेजा काँपने लगा और उन्हें भ्रम हुआ कि बाँया नेत्र फड़क रहा है । महाराज का शकुन के

ऊपर बड़ा विश्वास था। नेत्र का फड़कना उन्हें कुलक्षण सा प्रतीत हुआ। उनके मन में आया कि कोई न कोई दगाबाजी अवश्य हुई है। अब क्या करना चाहिए? परन्तु महाराज की वृत्ति ऐसी थी कि कोई भी प्रश्न उनके मन में अधिक देर तक न ठहरता था। वह तुरन्त मन-ही-मन उसका फैसला कर उसी के अनुसार करते थे। करें या न करें, इस सन्देह में वे देर तक न रहते। गढ़ के तले तक—कल्याण दरवाजे तक—तो जाना ही चाहिए, यह निश्चय कर वह आगे बढ़े। हिरोजी फर्जन्द और बालाजी आवजी ने आगे बढ़कर प्रार्थना की कि "जब तक गढ़ की वास्तविक स्थिति न मालूम हो जाए तब तक महाराज का वहाँ जाना उचित नहीं। यदि कोई बुरी बात हुई तो आप सहज ही मुगलों के हाथ में पड़ जाएँगे। वे आप को पकड़ने के सिवाय और चाहते ही क्या हैं? इसलिए महाराज को थोड़ी दूर वापिस जाकर ठहर जाना ही ठीक है। इतने में हम लोग खबर लेकर आजाएँगे।"

परन्तु महाराज का एक ही उत्तर था—"जिस भवानी माता ने दिल्ली में मुगलों के हाथ से बचाया क्या वही मुझे अब न बचाएगी? तानाजी को संकट में छोड़कर लौटना ठीक नहीं। इतना कह कर उन्होंने कृष्णघोड़ी के कोड़ा लगाया और बात की बात में वे गढ़ के तले पहुँचे। देखते हैं तो वहाँ मरहठों का पहरा लगा हुआ है। पहरेदारों ने बड़ी ताजीम से स्वागत किया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि गढ़ दो पहर रात को हाथ में आगया था। परन्तु जय का हर्ष किसी के मुख पर झलकता हुआ दिखाई नहीं दिया। महाराज फिर सदेह में पड़े। उनका वाम नेत्र जोर से फड़फड़ाने लगा। किसी अनिष्ट की आशंका से वह और कुछ पूछ-ताछ न कर गढ़ पर चढ़ने लगे। जगह

जगह पर चार-चार पाँच-पाँच मावले लोग बैठे हुए थे। महाराज को पहचान कर वे लोग प्रणाम करते परन्तु फिर सिर नीचा कर लेते। किसी का साहस न होता कि तानाजी की मृत्यु की बात कहें। महाराज सीढियों पर चढ़ने लगे तो सर्वत्र रुधिरमय ही रुधिरमय दिखाई दिया। दरवाज़े में होकर भीतर गए तो तमाम भूमि लाल लाल हो रही थी। जगह जगह टकियों का पानी भी लाल था। वह तमाम दृश्य बड़ा भयानक था। सब राजपूत सैनिक निःशस्त्र होकर बुर्ज के एक तरफ बैठे थे। महाराज के आगे आते ही, मानों अन्तः-प्रेरणा से, उहोने उस महान विभूति को प्रणाम किया। उनके प्रणाम को स्वीकार कर महाराज आगे बढ़े। जगह जगह पड़े हुए शवो में से अधिकांश राजपूतो के थे। परन्तु तानाजी, सूर्याजी या शेलारमामा में से कोई भी नहीं दिखाई दिया। ज़रा और आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक शव पर सुफेद वस्त्र डाल कर सूर्याजी और शेलारमामा बैठे हुए थे। महाराज मन मे शंकित हो कुछ ठिठक कर आगे बढ़े। शेलारमामा ने उन्हें देखा और वह चिल्लाता हुआ दौड़ा—“ महाराज ! हाय, मेरा तानाजी चला गया, आप का तानाजी चला गया।” उस वृद्ध के ये हृदय-भेदी शब्द सुन कर महाराज का शरीर काँप गया और उसे उन्होंने अपनी भुजाओ मे लपेट लिया। कितनी ही देर तक वे दोनों इसी अवस्था मे रहे। फिर, बाद मे शेलारमामा को मुक्त कर महाराज ने अपने सिर की पगड़ी और किरीट उतार दिया और सिर से सुफेद दुपट्टा लपेटा। चरणो के जूते निकाल कर तानाजी के मृतदेह के पास गए। हाथ से उसकी चादर उठायी और आकाश की ओर लगी हुई उसकी दृष्टि पर कितनी ही देर तक टकटकी लगाए रहे। उनके नेत्रो से अश्रुधारा बह चली। वे कुछ तटस्थ की सो

भाँति उसको देख रहे थे मानों वह इस सन्देह में हों कि तानाजी सचमुच मर गया है अथवा सो रहा है।

कुछ देर के बाद वह सूर्याजी के पास गए। अपने कंधे के दुपट्टे से उसके नेत्र पोंछे और गद्गद् कंठ से बोले, "सूर्याजी, गढ़ हाथ आगया परन्तु सिंह छोड़ कर चला गया। खैर, भवानी माता की इच्छा! मामाजी, मैं किस प्रकार आपको तसल्ली दे सकता हूँ। समझ लीजिए कि शिवाजी की ही मृत्यु होगई है और तानाजी मौजूद है। जानकीबाई से भी यही मेरा संदेश कहना। उससे कहना कि जैसे मेरे लिए शम्भाजी और राजाराम, ये दोनों, हैं वैसे ही तीसरा रायबा भी है।"

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

उपसंहार

पाठकों को विदित है कि जिस समय महाराज तानाजी के शव के पास गए उस समय जगतसिंह वहाँ न था। वह राजमहल के भीतर अपनी स्त्री के शव के निकट बैठा हुआ शोक मना रहा था। कमलकुमारी भी अपनी सखी के पास बैठी हुई चिल्ला रही थी। तनाजी के शव को पैर से लिथेड़ने की इच्छा करने वाले उदयभानु की टाँग काट कर और उसकी अन्त-क्रिया को शेलारमामा के सुपुर्द कर, तथा बाद में शेलारमामा के हाथ से ही उस का परलोक-गमन देख जगतसिंह अपनी स्त्री की खोज में राजमहल के भीतर गया और उसका पता लगाने लगा। पहले तो उसका मौक़ा ही न लगा परन्तु जब उसने अन्त:पुर में ज़बर्दस्ती घुस जाने की धमकी दी तो एक सिद्दन ने देवलदेवी का शव उसके सामने ला रक्खा। उसने यह भी बतला दिया कि अपने पति की हत्या तथा उदयभानु के साथ कमलकुमारी के निकाह का समाचार सुन इसने अपनी ओढ़नी से फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। परन्तु जगतसिंह को सदेह था कि देवलदेवी ने स्वयं आत्महत्या की है या इस सिद्दन ने उसको जान से मार डाला है। जब उसने ज़ोर से डाटकर पूछा तो कभी तो वह अपराध स्वीकार करती और कभी कहती कि इसने स्वयं ही आत्महत्या

को है। परन्तु कुछ भी हो, यह बात तो सच ही थी कि जगतसिंह की स्त्री अब इस ससार में नहीं है, इसलिए उसने इसके सम्बन्ध में, कि वह कैसे मरी, विशेष खोज करने का प्रयत्न नहीं किया।

कमलकुमारी यह समाचार सुनते ही रोती चिल्लाती हुई वहाँ आगई। शिवाजी महाराज का आगमन सुन उसने हाथ जोड़ कर जगतसिंह से कहा, "जगतसिंह जी, मेरे कारण ही तुम्हारा सर्वनाश हुआ है। किस मुँह से मैं तुमसे कोई प्रार्थना कर सकती हूँ। परन्तु मेरा यह अन्तिम अनुरोध है। जिस भाँति तुमने मुझे उस दुष्ट के हाथ से बचाया है उसी भाँति अब तुरन्त मुझे सती होने की आज्ञा दिलवा दो। शिवाजी महाराज हिन्दू धर्म के सरक्षक हैं। वह अवश्य ही सती को यह भिक्षा दान करेंगे, अस्वीकार नहीं करेंगे।"

उसको यह प्रार्थना सुन जगतसिंह दहल गया और वह चुपचाप वहाँ से निकल कर बाहर आया। तदनन्तर महाराज से भेट कर उसने अपना हाल सुनाया। उसने यह भी बताया कि तानाजी ने पिछली रात में बारह बजने से पहले ही गढ पर क्यों अधिकार किया। सब वृत्तान्त सुना कर उसने कमलकुमारी के सती होने के लिए अनुमति माँगी। महाराज ने तत्काल ही अनुमति नहीं दी और कहा, "देखो, यदि उसका मन बदल सके तो जान देना उचित नहीं। यह कठिन काम है।" परन्तु कमलकुमारी का निश्चय दृढ था—वह भला कैसे मान सकती थी। उसने शिवाजी के पास पुन सन्देश भेजा—"महाराज, मैं अभागिनी हूँ। मेरे लिए जान देना कठिन नहीं है। मेरे पति स्वर्गवासी हैं। अनेक दु ख सहन करने के बाद मेरे पिता की मृत्यु हुई। सकट में साथ देने वाली मेरी सखी इस प्रकार चली गई। अधिक क्या कहूँ।—मेरी मुक्ति कराने वाला, केवल पचास मनुष्य साथ में लेकर हजार

राजपूतों पर टूट पड़ने वाला, आपका सरदार भी नहीं रहा। नहीं कह सकती कि इस जगत् में मेरे रहने से कितने अनर्थ होंगे। मुझे सती होने देंगे तो मैं आशीर्वाद दूँगी और मुझे भी पुण्य होगा। मेरे लिए दुःख मनाने को इस संसार मे कोई नही है। इतने पर भी यदि आप अनुज्ञा नहीं देंगे तो मेरी सखी का उदाहरण मेरे सामने है ही।"

उसका ऐसा दृढ़ निश्चय देख महाराज ने सती होने की उसे अनुज्ञा दे दी और तैयारी करने के लिए बालाजी से कहा। कल्याण से एक ब्राह्मण उपाध्याय को बुलवा भेजा। कमलकुमारी ने इच्छा प्रकट की कि, अपनी सखी को अग्नि दिलाने के अनन्तर ही मैं अग्नि-प्रवेश करूँगी। उसके अनुसार पहले देवलदेवी की ही चिता बनाई गई। देवलदेवी के शव को उठाते समय कमलकुमारी सहसा रो उठी—"हाय, देवल! मुझे अग्निप्रवेश कराने में सहायता देने तू आई थी और मुझसे पहले ही चल बसी—हाय!—"

कमलकुमारी का यह विलाप सुनते ही तमाम उपस्थित जनों का हृदय विदीर्ण हो गया। देवलदेवी की चिता का अग्निसंस्कार हो जाने के बाद, एक राजपूत स्त्री से चर्चन आदि संस्कार कराकर कमलकुमारी चिता-प्रवेश करने के लिए धर्म की शिला पर खड़ी हुई। आज तक जिन पादुकाओं को उसने हृदय से लगा रक्खा था वे अब भी वहीं थीं। उपाध्याय मंत्र पढ़ रहा था और वह शान्ति से सुन रही थी और उसके कथनानुसार ही करती जाती थी। तदनन्तर महाराज ने उसके चरणों पर मस्तक नवाया और उनके बाद दूसरे लोगों ने भी वैसा ही किया। फिर, गम्भीर वाणी मे "भगवान् एकलिंग जी तुम सब का कल्याण करें और महाराज [illegible]

में यश दें," यह आशीर्वाद देकर उसने चिता में प्रवेश किया। एक भी उच्छ्वास या सिसकी उस चिता में से नहीं सुनाई दी, मानों उसो चिता में उसका पति उसे मिल गया हो और उसी के आनन्द में वह एकदम समा गई हो।

इस भीड़ में जगतसिंह कहीं अदृश्य हो गया। बहुत खोज करने पर भी वह नहीं मिला। उदयभानु का जनानखाना राजपूत सैनिकों के साथ कर महाराज ने दिल्ली को रवाना करवा दिया और उस काजी को औरंगाबाद भिजवा दिया।

जिस दरी में से तानाजी उपर चढ़ कर आया था उसका तट बाँध कर बन्द करने का महाराज ने हुक्म दिया जिससे कि दूसरा कोई उपर न चढ़ सके। तब बालाजी आवजी ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज के आज्ञानुसार तट बँधवा दिया जाएगा। परन्तु सब लोगों की इच्छा है कि जिस स्थान पर तानाजी की मृत्यु हुई है वहाँ उनकी एक समाधि बनवा दी जाए। इसके सम्बध में महाराज की आज्ञा ही प्रमाण है।"

"क्यों नहीं ? अवश्य।" महाराज ने जोर के साथ कहा, 'पर चिटनवीस जी ! इस चूने पत्थर की समाधि से तानाजी का क्या होगा। उसका सच्चा समाधि-स्थान तो मेरा हृदय है। अस्तु, तानाजी की समाधि के साथ ही साथ उदयभानु की भी एक कब्र बनवा देनी चाहिए।"

तानाजी की वह समाधि, सती की मूर्ति, और उदयभानु की कब्र आज भी उस गढ़ में विद्यमान हैं।

तानाजी की मृत्यु के तेरह [illegible] महाराज ने स्वयं उमराठे ग्राम में जाकर अच्छ्‌ [illegible] की शादी करवाई और सूर्याजी को सिंहगढ़ का [illegible] ग्राम उसे इनाम में दिए।